विषय हो तो ज्याद कम न होना चाहिये। और दूरी का नियम सब पर लागू है।

(२) यंत्र ठीक होना चाहिये जिस में आंख, कान, नाक, जिव्हा और चमड़ी शामिल हैं।

(३) मन का विषय से उदासीन होना यानी विषय में लीन न होना भी भूल का कारण बन जाता है।

जब तक हमारे मन में यह बात नहीं आती कि स्पर्श शक्ति भी हमारे लिये उपयोगी है तब तक हमको उसकी तरफ खयाल ही क्यों होने लगा। परन्तु यह बात याद रखनी चाहिये कि यह पांचों इन्द्रियें आपस में इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं कि अभ्यास से शक्ति बढ़ा कर हम एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का काम भी ले सकते हैं। यह बात अनजान के लिये जितनी असम्भव प्रतीत होती है जानकार के लिये उतनी ही सहल भी है। इस शक्ति की ज्ञान वृद्धि के लिये यदि कोई सहायक यंत्र बनेगा तो उस में आकाश और वायु दो ही तत्वों की प्रधानता रहेगी।

इसके अभ्यास के लिये नियमित रूप से खुली हवा में जहां पर सर्दी गर्मी की समता हो भोजन पचने और शौच स्नान से निवृत्त होने के बाद नंगे बदन बैठ कर

श्री जुबिली नागरी भंडार पुस्त
बीकानेर

चमड़ी में लीन करके स्पर्श का ध्यान करना होगा और अच्छी तरह चमड़ी को मलकर धोकर मुलायम रखना चाहिये तब स्पर्श शक्ति की वृद्धि होगी।

वायु का विषय बड़ा रोचक और विचित्र है। आधुनिक विज्ञानिकों ने बहुत से गुणस्वभाव वायु के मालूम करके बड़ा लाभ उठाया है और बहुत से ग्रन्थ इसके विषय में लिखे जा चुके हैं। पाश्चात विद्वानों ने इस बारे में रसायन शास्त्रों में बहुत कुछ प्रकाश डाला है और वायु के विभाग करके उनको गैस का नाम दिया है। गैस अनेक प्रकार के हैं - जैसे ओक्सिजन (ज्वलन सहाय), कार्बन (अंगार), अभिद्रयजन (ज्वलन शील अथवा पानी बनाने वाला), नेत्रजन (ज्वलन बाधक या मन्द चारी), इत्यादि। परन्तु उनका ज्ञान अपूर्ण है और विभाजन भी कृत्रिम है। हमारे शास्त्रों में वायु के कुछ विभाग इस प्रकार किये गये हैं कि जो परमावश्यक हैं :—

(१) प्राण वायु—इसमें अधिक भाग ओक्सिजन Oxygen का है। मुख और नाक से जो वायु आती जाती है उसका नाम प्राण वायु है और यह फेफड़ों में यानी नाक और मुख से हृदय पर्यन्त रहती है।

(२) अपान वायु—इसमें अधिक भाग कार्बन डा
होता है और यह डकार और गुदा छिद्र
मलमूत्र के साथ बाहर आती है। (र मलमू
के निष्काशन में सहायक है यह नाभी से
पगथली यानी पड़ी तक रहती है विकार
होने पर कभी कभी डकार रूप में मुख से
भी बाहर आ जाती है।

(३) समान वायु—शरीर में जो पाचन होकर रस
बनता है उसको यथास्थान आवश्यकता
नुसार पहुंचाती है। इसमें नेत्रजन गैस
प्रधान है। और अधिकतर हृदय से न...
तक रहती है।

(४) उदान वायु—यह रस रुधिर को ऊपर...
का काम करती है और अभिद्रवजन प्रधान
है और नाक से सिर पर्यन्त यह आती जाती
है। जुकाम नज़ला इसी की करतूत है।

(५) व्यान वायु--तमाम शरीर में रहती है यह
ओषजन, नेत्रजन और आर्गन गैस का
मिश्रण है। आर्गन और दूसरे गैस बहुत
कम मात्रा में होते हैं।

श्वास के वेग से आवागमन होने से शरीर में गर्मी बढ़ती है और रुधिर गरम होकर बुखार हो जाता है दिल की धड़कन और नाड़ी की रफ्तार भी बढ़ जाती है और असाधारण हो जाती है। श्वास की गति कम होने से बदन ठण्डा हो जाता है अस्वस्थ हो तो मनुष्य मर भी जाता है। इसलिये श्वास की गति साधारण ही स्वास्थ्यप्रद होती है।

अग्नि ।

यह तत्व भी प्राणीमात्र का हितकारक है। रूप इस का गुण है. नेत्रों से देखा जाता है। हर वस्तु में गर्मी किसी न किसी मिकदार में मौजूद है तभी तो घर्षण से या रसायन से उसका प्रगटरूप दिखाई देने लगता है। इसमें भी परिवर्तन करने का गुण है। वायु दो मिली हुई वस्तु में परिवर्तन करके तीसरी वस्तु बनाती है तो अग्नि दो वस्तुओं को मिल कर टकराने से उत्पन्न होकर या दो मिली हुई वस्तुओं को विच्छेद करने समय प्रगट होकर उनमें परिवर्तन करती है वायु किसी वस्तु को दांये बांये, सामने और पीछे की ओर चलने में सहायक होती है तो अग्नि ऊपर या नीचे को धकेलने वाली है। यह दोनों चलन सहाय हैं। और अग्नि में निर्माण करने या उष्ण गर्मी होने का भी गुण है।

जल की उत्पत्ति भी अग्नि से है अगर गर्मी न हो तो ना उ भी जम कर बरफ यानी ठोस हो जाता है। इसके अतिरिक्त अग्नि में जीव होने का सबसे बड़ा प्रमाण ना यह है कि अग्नि में ऊर्मी होते हैं जो यंत्रों से दिखाई देते हैं।

जिस प्रकार अग्नि से आकार और पराक्रम व आकार की वृद्धि होती है उसी प्रकार अग्नि की प्रबलता से बुद्धि मन्द भी होती है। शीत प्रधान देश के मनुष्य तीव्र बुद्धि वाले होते हैं तो गरम देश के रहने वाले अधिक बलवान और बड़े डीलडौल के होते हैं। यह साधारण नियम है परन्तु यह बात नहीं है कि गरम देश में रहने वाले ठण्डे स्वभाव के और बुद्धिमान न हों या ठण्डे देश के आदमी क्रूर और बुद्धिहीन न हों बल्कि यह बात प्राणीमात्र की अपनी शारीरिक गर्मी से भी सम्बन्ध रखती है। यह निश्चित बात है कि क्रोधी आदमी मन्द बुद्धि होता है और शान्ति वाला गम्भीर बुद्धिमान।

दृष्टि।

नेत्र यंत्र देखने के काम आता है और इसमें अग्नितत्व की प्रधानता इसलिये भी माननी पड़ती है कि अग्नि का गुण है रूप और नेत्र देखने का यंत्र है। दूसरे सब से बड़ा प्रमाण तो इसके अग्नि प्रधान होने का यह है कि ...

रात दिन हमारी आंखों के सामने होता रहता है परन्तु आ[illegible] लोगों को यह मालूम नहीं कि यह क्या है। यह धातु व[illegible] धातु मिश्रित पत्थर के पिण्ड होते हैं कि जो किसी ग्रह व[illegible] उपग्रह से टूट कर आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं और ज[illegible] किसी ग्रह की आकर्षण शक्ति में यानी नजदीक आजाते हैं तो आकर्षित हो कर उसी तरफ वेग से चलते हैं। मार्ग में वायु से उत्तप्त हो वाष्प रूप हो जाते हैं, और कोई उल्का बहुत बड़े आकार की हुई और सारे मार्ग में वाष्प रूप नहीं पाई तो उस ग्रह पर जा गिरती है परन्तु उसका आकार बहुत छोटा हो जाता है। ऐसी कई उल्का हमारी पृथ्वी पर भी गिरी हैं जो कई जगह अजायबखानों में रक्खी हुई हैं।

उल्का की उत्पत्ति दूसरी प्रकार से इस तरह होती है कि बहुत से गैस समूह जो ग्रह के ठण्डे होने से पहले यानी सूर्य रूप में ही उससे अलग होकर आकाश में घूमने लगते हैं जिन में से बड़े २ गैस समूह हमको कभी कभी दिखाई भी देते हैं और जिनको हम धूम्रकेतु या चोटीवाला तारा कहते हैं। उन गैस समूह में से किसी का गैस अधिक समय पाकर ठण्डा और भारी होने २ ठोस हो जाता है और जिसकी गति कम हो जाती है वह उल्का का रूप धारण कर लेते हैं। यदि किसी कारण से गर्मी की वृद्धि

ो जाती है तो यह फिर गैस रूप धारण कर लेते हैं और र्मी न रहने से ठोस हो जाते हैं। उल्का की उत्पत्ति और लय इसी प्रकार आकाश में निरन्तर जारी रहती है और हेगी। उल्का की तरह ही ग्रह और उपग्रह की उत्पत्ति और प्रलय होती है।

जल।

पानी भी संसार में बड़ी उपकारी वस्तु है। आकाश में भूपटल पर और भूमि के भीतर सब जगह पानी मौजूद है। भूपटल पर ३ पृथ्वी और ३ पानी दिखाई देता है यह दो गैस से बनता है एक भाग आक्सिजन और दो भाग हाइड्रोजन मिलकर पानी बनाते हैं। बहुत सी वस्तु पानी में घुल जाती है। यह तो साधारण पानी की व्याख्या है परन्तु पानी तरल पदार्थ का नाम है और सब वस्तु पानी पानी तरल हो सकती है जो वायु जल और पृथ्वी तत्व का मिश्रण है। पानी बनाने के लिए गैस किसी भी प्रकार का हो पानी वायु का पानी बनता है। तब उस में ठंड और दबाव की आवश्यकता होती है और ठोस पदार्थ का पानी बनने के लिए उष्णता और दबाव की आवश्यकता होती है परन्तु पानी सदका बन जाता है। यह वायु और पृथ्वी का मध्यम है। अधिक दबाव पृथ्वी तरह बनता है

[illegible] प्रकार स्वभाव वायु कहाँ [illegible] बतलाता है । अत एव [illegible] स्थिति का नाम है । इसी लिये भूपटल पर [illegible] अधिक है । पृथ्वी के भीतर भी [illegible] रूप से रहते परन्तु आकाश में वायु रूप में ही मिलता है गैस वायु [illegible] ठीक नाम नहीं जनता क्योंकि वायु का अर्थ स्थिर [illegible] गैस का परिमित है । इसी के आधार पर यह कहा [illegible] सकता है कि आजकल के विज्ञानियों ने जिन जिन गैसों की खोज की है वही सब पता नहीं है संसार में और भी अनेक प्रकार के गैस हैं जिनका अभी तक पता नहीं लग है बहुत से तो भूपटल पर ही खोज होने से बाकी हैं और भूमध्य और ऊर्ध्वाकाश में तो न मालूम क्या २ रहस्य अभी तक छिपा है और कितने प्रकार के गैस मौजूद हैं विधाता के विधान का पार तो वही पा सकता है जिसने विधाता को पा लिया और विधाता पाजाने वाला संसार से अलग हो जाता है इस प्रकार यह रहस्य प्रगट नहीं होने पाते । इन सब बातों को देख कर कहना पड़ता है कि गैस वायु का अंश कहा जा सकता है ।

साधारण जल की उत्पत्ति और लय का नियम इस प्रकार है कि जब सूर्य की Ray या किरण पृथ्वी पर पड़ती हैं तो भूपटल का जल यानी जो समुद्र है उस में से गर्मी के कारण जल वाष्प रूप में होकर ऊपर को उठता [illegible]

जन बन जाता है इस लिये पानी गम चाहे कं
हमको मतलब नहीं।

अभिद्रयजन हल्की होने के कारण आकाश में
पाकर अधिक ऊंची चली जाती है और ओपजन
होने के कारण उसी गर्मी में उतनी ऊंची नहीं जा सकती
जब सर्दी पहुंचती है तब अभिद्रयजन पर उसका
शीघ्र होता है और वह संकुचित और भारी होकर
नीचे को आती है। ओपजन पर देर में असर होता है इस
देर से संकुचित और भारी होती है और फिर नीचे
आती है तब तक दोनों गैस आपस में मिल जाती हैं
इसी सम्मेलन से कड़क और बिजली उत्पन्न होती
गरजना होती है और वर्षा होती है।

ठोस पदार्थ का यह भी गुण है कि प्रकाश और
को वापिस फेंकता है और आकाश में यह गुण नहीं
अलबत्ता प्रतिबिम्बकारी है और जल में यह दोनों
हैं। इसी लिये उपरोक्त किया भूपटल पर नजदीक ही
करती है और आकाश में गर्मी का कुछ असर नहीं होता

आकाश पर गर्मी असर नहीं करती। वायु गर्मी
फैलती है। अग्नि वृद्धि पानी है और यह अग्नि का ही अंश
है इस लिये उसमें मिल जाती है। जल गर्मी को अपने
अन्दर प्रवेश करने से रोकता है अगर कुछ भी दबाव न
हो तो गर्मी लगते ही जल गैस बन कर उड़ जाता है।

जल बन जाता है इस लिये बाकी गैस चाहे कैसी ही हो हमको मतलब नहीं।

अभिद्रवजन हल्की होने के कारण आकाश की गर्मी पाकर अधिक ऊंची चली जाती है और ओपजन भारी होने के कारण उसी गर्मी में उतनी ऊंची नहीं जा सकती, जब सर्दी पहुंचती है तब अभिद्रवजन पर उसका असर शीघ्र होता है और वह संकुचित और भारी होकर शीघ्र नीचे को आती है। ओपजन पर देर में असर होता है इस लिये देर से संकुचित और भारी होती है और फिर नीचे को आती है तब तक दोनों गैस आपस में मिल जाती हैं। इसी सम्मेलन से कड़क और विजली उत्पन्न होती है गरजना होती है और वर्षा होती है।

ठोस पदार्थ का यह भी गुण है कि प्रकाश और उत्ताप को वापिस फेंकता है और आकाश में यह गुण नहीं है। अलबत्ता प्रतिबिम्बकारी है और जल में यह दोनों गुण हैं। इसी लिये उपरोक्त किया भूपटल पर नज़दीक ही हुवा करती है और आकाश में गर्मी का कुछ असर नहीं हो—

होता परन्तु एक तो ओषजन ऊपर कम पहुंचता है। दूसरे इसका विरोधी उससे अधिक ऊपर पहुंचता है। इसलिये जहां ओषजन कार्बन से मिल कर आग लगाता है, वहीं नेत्रजन पहुंच कर उसको ठगडा कर देता है और यह नोनों अधिक ऊंचे भारी होने के सबब जा नहीं सकते। इसी लिये थोड़ी ऊंचाई पर ही बिजली और ज्वाला उत्पन्न होती है। और वर्षा के लिये जल बनता है।

जल परिवर्तन सहाय और प्राणी उत्पादक है। इसीसे स्थावर जङ्गम चराचर की उत्पत्ति और वृद्धि होती है यानी बीज से अंकुर यही निकाल कर बढ़ाता है।

रस ।

जल का गुण है रस । रसास्वादन जिव्हा से होता है। रस के ६ बड़े विभाग हैं परन्तु छोटे छोटे विभाग किये जावें तो अनेक हो सकते हैं। तिक्त १ खट्टा २ मीठा ३ कषाय ४ कटु ५ फीका ६। परन्तु यह हृदयग्राही और छेदनीय दो प्रकार के होते हैं।

नहीं बल्कि मालाकार है। इसलिये कभी पृथ्वी सूर्य से दूर हो जाती है और कभी कुछ समीप आजाती है। जिस भूभाग पर (पृथ्वी के ऊपर) सूर्य की सीधी किरण पड़ती है वहां गर्मी और टेढ़ी किरण पड़ती है वहां सर्दी अधिक पड़ती है। इसी हिसाब से जो भाग अधिकतर सामने रहता है गरम देश कहलाता है। जब पृथ्वी सूर्य के समीप उस स्थान पर पहुंचती है जहां से सीधी रेखा किरण पड़ती है वहां गर्मी की मौसिम आजाती है। पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन का विवरण तो आज कल स्कूलों में बच्चों को पढ़ाया जाता है इसलिये सब जानते हैं दूसरी चाल पृथ्वी की अपनी धुरी पर घूमने की है जिससे दिन रात बनते हैं। इसके अलावा तीसरी चाल सौर जगत के साथ पृथ्वी के आकाश में घूमने की है जिससे युग परिवर्तन होता है, जमाना रंग बदलता है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर क्यों घूमती है? आधुनिक विद्वानों के मतानुसार सूर्य्य एक वाष्प का गोला है जिसमें सभी प्रकार के गैस हैं इसी लिये वह स्वयम प्रकाशमान और उष्ण है। इसका विभाजन होकर कुछ गैस समूह इससे अलग हो जाता है और आकाश में सूर्य से दूर चला जाता है परन्तु सूर्य के गिर्द घूमता रहता है और समय पाकर ठण्डा हो जाता है, तब ठोस होकर ग्रह कहलाने लगता है। इसी प्रकार हमारी इस पृथ्वी और उससे उपग्रह चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है और गति विधान के कारण जब

ताप बढ़कर वर्षा के वेग में सहायक होता है। बाहरी सतह के ठण्डी होने पर प्राणी उत्पन्न होते हैं और जब धीरे धीरे ठण्ड बढ़कर वर्षा की कमी होने होने जल का अभाव हो जाता है, तब प्रलय हो जाती है।

पृथ्वी तत्व में एक से दूसरी वस्तु में जो भिन्नता पाई जाती है उसका कारण तत्वों की कम वेश मात्रा और उनकी बनावट है वरना सब की उत्पत्ति एक ही महत् तत्व से होती है।

चिकनी मिट्टी में गैस या गरम वायु लगने से पहले उसका रंग पीला स्वाद खट्टा और कुछ कठोरता आती है बाद में क्रम से नारंगी, लाल, कत्थई, हरा, काला और श्वेत रंग हो जाता है और दबाव अधिक पड़ने से पत्थर, कोयला इत्यादि बन जाते हैं और उनका स्वाद भी [illegible]

लन की बराबरी कृत्रिम सम्मेलन कर सकता है। इसी लिये यह जानते हुए भी कि हीरा किन किन वस्तुओं का सम्मेलन है, अभी तक हीरा बनाने में कामयाबी नहीं हुई, नाहीं एक धातु को दूसरी धातु में परिणित किया जा सका। और भी

इसी प्रकार बीज वृक्ष होता है और उसी वृक्ष में फल लग कर बीज तय्यार होते हैं और यही बीज जल और पृथ्वी के संसर्ग से पुनः वृक्ष बन जाते हैं। प्राणी मात्र और चराचर के स्थूल शरीर की उत्पत्ति और वृद्धि इसी मिट्टी की सहायता से होती है। मनुष्य अधिकतर पृथ्वी तत्व को व्यवहार में लाते हैं। नतीजा यह कि पृथ्वी विजातीय परमाणु और अणु का सम्मेलन करती है और जल विच्छेदन करता है। वायु स्वजातीय परमाणु का सम्मेलन करती है तो अग्नि उनका विलगाव करती है। इसी तरह जो वस्तु जिस स्थान से चलती है, समय पाकर उसी स्थान पर आ जाती है, या जैसी अवस्था प्रगट होती है परिवर्तन होते २ उसी अवस्था में फिर पहुंच जाती है। यदि बीज का पृथ्वी तत्व से स्पर्श न हो तो मैं नहीं कह सकता कि उस से स्थूल की उत्पत्ति होजायगी।

गन्ध।

पृथ्वी का गुण गन्ध है। चाहे पृथ्वी सूक्ष्म रूप धारण करे चाहे स्थूल परन्तु गन्ध उस में अवश्य होती है। गन्ध से प्रत्येक वस्तु और प्राणी की पहचान हो सकती है। इस शक्ति से विशेष लाभ उठाने से एक मनुष्य जाति ही वञ्चित है, पशु पक्षी तो इससे पूरा लाभ उठाते हैं। सरकस में घोड़े सूंघ कर छुए हुए रुमाल को बतला देते हैं। मैंने स्पर्श की हुई दुअन्नी चौअन्नी पत्तियों को ढूंढ़ कर निकालते

तालाब में कङ्कर फेंकने से लहर उठ कर सारे जल के ऊपर फैलती है, उसी प्रकार शब्द लहरी भी सारे आकाश में फैलती है जिससे आकाश में कम्पन होता है। कम्पन यानी हिलने से वायु उत्पन्न होती है। वायु का वायु से स्पर्श या संघर्ष होने से अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि से वायु के दो विभाग हो जाते हैं यानी जहां तक अग्नि का उत्ताप पहुंचता है वायु गरम होजाती है और जब एक भाग वायु उत्तप्त होता है तो आस पास की वायु से गर्मी निकल कर उसमें आजाती है और बाकी वायु ठंडी रह जाती है और जब ठंडी और गरम वायु आपस में मिलती है तो जल बन जाता है। जल में गर्मी यानी अग्नि का उत्ताप पहुंचने से वह गैस यानी वायु रूप धारण कर लेता है और जल में वायु लगने से वह ठणडा होकर जम जाता है और गैस वायु से मिल कर जल बनाते रहते हैं और ठण्डक और वायु मिल कर जलको ठोस यानी पृथ्वी (बरफ) रूप में परिणित कर देते हैं। जल का मतलब तरल पदार्थ से है और प्रत्येक वायु दबाव पाकर तरल होती है और फिर ठणडी होने और दबाव पड़ने से वह ठोस रूप धारण कर लेती है। आधुनिक विज्ञानिकों का यह कहना है कि एक घन-फुट वायु का भार करीब ३ तोला ८ माशा होता है। इस हिसाब से आकाश में ज्यों ज्यों वायु वृद्धि होती है वायु का कुदरती दबाव बढ़ता जाता है और जब एक दफा पृथ्वी

तत्व बन जाता है तो उसमें आकर्षण शक्ति होने के कारण उसका भी दबाव पड़ता है। इसी तरह पांचों तत्व के सम्मिश्रण और सम्मेलन से नानाप्रकार की सृष्टी होती है। प्रस्तुत संसार इन्हीं पांचों तत्वों के सम्मिश्रण और सम्मेलन का नमूना है।

काल विभाग।

यों तो पांचों तत्व आपस में मिले रहते हैं परन्तु जो तत्व जिस मिश्रण या सम्मेलन में अधिक होता है उसको केवल अधिक तत्व वाला ही नाम दिया जाता है।

जिसको हम पृथ्वी नाम से पुकारते हैं उसमें जल, वायु, आकाश और अग्नि मौजूद है। इसी तरह जल में भी बाकी चार तत्व होते हैं। समुद्र में जिसको हम निरा जल समझते हैं, वड़वानल (अग्नि) होती है। इसी प्रकार दूसरे तत्वों का हाल है।

काल के चार भाग करके उनको युग कहते हैं। सृष्टी के आदि में सतयुग बाद में क्रमशः त्रेता, द्वापर और कलियुग। आकाश तो कुछ नहीं और आदि में है अन्त में भी रहेगा बाकी चार तत्वों का युगों के अनुसार इस प्रकार भाग किया जाता है कि सतयुग पूर्वार्ध में वायु उत्तरार्ध में अग्नि, त्रेता पूर्वार्ध में जल उत्तरार्ध में पृथ्वी तत्व की प्रधानता रही। यह उत्पत्ति और वृद्धि का समय था। उसी प्रकार

बाद में लय का जमाना आया तो द्वापर के पूर्वार्ध में पृथ्वी और उत्तरार्ध में जल तत्व की प्रधानता रही और अब कलियुग का पूर्वार्ध है, इस लिये अग्नि तत्व की प्रधानता है। उत्पत्ति काल में पूर्व, वर्तमान और आगामी तीन तत्व का जोर रहता था परन्तु लय काल में पूर्व तत्व के बल का ह्रास और आगामी के बाद का यानी निकट भविष्य के तत्व से बल बढ़ता है। गत तत्व क्रमशः निर्बल होते जाते हैं।

प्रत्येक वस्तु या कार्य में भी काल के अनुसार तत्व की प्रधानता पाई जाती हैं। जिसका पता गुणों के मिलाने से चल सकता है।

(१) आकाश की जांच के लिये दो गुण प्रधान हैं। विस्तार यानी बड़ा होना १, पोल या खाली थोथा यानी तत्थ्यहीन होना २, और भी गुण इसमें हैं जैसे शब्द, निराकार इत्यादि।

(२) वायु में एक तो वेग और दूसरा टेढ़ा तिरछा चलना तीसरा परिवर्तन चौथा शीतलता यानी हृदयग्राही और स्पर्श तो इसका असली गुण है ही।

(३) अग्नि में उत्ताप यानी क्रूरता, गर्मी, प्रकाश, उग्रता, सौन्दर्य, रूपान्तर करना, फोर्स यानी विदीर्ण शक्ति (धक्का लगाना) इत्यादि गुण हैं।

(४) जल में रसिकता, आस्वादन, चिकनापन यानी तरल इत्यादि।

(५) पृथ्वी में ठोस यानी सत्य, दृढ़ता, संकुचित होना, लज्या, छोटा, भारी होना इत्यादि गुण हैं।

अब इनका कार्यों से मीलान कीजिये।

किसी समय पृथ्वी तत्व की प्रधानता थी, तब पृथ्वी को माता कहकर पुकारा जाता था; पूजन पृथ्वी का किया जाता था; उसका मालिक वही होता था जो उसको काम में लावे। मिट्टी का बर्तन इत्यादि बनाने में और पत्थरों का अधिक इस्तेमाल होता था; जवाहिरात को लोग अधिक पसन्द करते थे। ज्यों ज्यों इसकी प्रधानता घटी, मिट्टी की चीजें लोगों को बुरी लगने लगीं। भूमि का अधिकार क्रमशः काश्तकार, मालिक, पट्टेदार, या जागीरदार, राजा, महाराजा, बादशाह और शाहन्शाह में बंट गया।

जल की जब प्रधानता थी, तब इन्द्र की उपासना होती थी, यदि भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रथा को बन्द न करते तो अब तक देखने में आती। कुवा, बावड़ी, तालाब, नहर, बान्ध तो प्रत्यक्ष जल स्थान हैं और उस समय में इनके बनानेवाला स्वर्ग का अधिकारी गिना जाता था। यहां तक कि जल में मल मूत्र का त्याग धर्म विरुद्ध गिना जाता था। मृदु भाषण सर्व श्रेष्ठ और प्रधान गिना जाता था। कवितारस का दौर दौरा था। सभी वस्तु रसाढ थीं। रस विहीन वस्तु को कोई पूछता ही नहीं था।

यह दोनों गत या जोगा तत्व हैं इस लिये इनका विस्तार से विवर्शन करना व्यर्थ है समय का व्यय करना है। अब बाकी तीन तत्वों को लीजिये।

इस समय स्थूल शरीर (जिस में पृथ्वी और जल तत्व का अधिक मिश्रण है) से काम लेना बुरा और अपव्यय है। खाने में डबल रोटी और बिस्कुट जिन में आकाश तत्व की प्रधानता, पीने में सोडावाटर, नीमलेट, विमटो, जिन में वायु तत्व की प्रधानता सोने में नरम गदेला और रबर का पिल्लौर जिस में वायु भरी हुई मकान कुशादा बंगले जिनमें बड़ा प्रकाश और अन्धाधुन्ध वायु आने के के लिये दरवाजे और खिड़कियां, रोशनदान जाबजा बने हुए, बड़े २ हॉल, कम्पाउण्ड, बैठने को खुली वायु के बगीचे जिन में दूब ही दूब वृक्ष नदारद, टहलने को हवादार सदर सड़क, खेलने को लम्बे चौड़े ग्राउण्ड, और फुटबाल वोली बॉल जिनमें वायु भरी हुई, चढ़ने को मोटर साइकल, लॉरी जिनके पहियों में वायु भरी हुई और अग्नि से चलने वाली रेल, हवाई और दरियाई जहाज जिन मे अग्नि और वायु की प्रधानता, तार, रेडियो, वायरलेस बिजली के खम्भे रोशनी, पंखे जेल और पखाने तक में मौजूद, व्यापार बात चीत सब हवाई, बन्दूक हवाई, जागीर, इज्जत, खिताब, सब हवाई यानी सर और ए.बी.सी. सभा सोसाइटी और कान्फ्रेन्स सब हवाई, अहद मुआहदे हवाई। समुद्र तो पहले

ः चुका था, अब आकाश और हवा की बारी आई,
' डाक, हवाई तार, हवाई मन्सूबे, खिलौने भी थोथे
हवाई, हाथ में रखने की छड़ी, हथियार हवाई,
ड़ में हवा भराई, मौत हवाई न कोई मर्ज ना दवाई,
क में नहीं आया तो हर्ट फेल (Heart Fail) की
' ग्र ई, कोई वस्तु हवा से खाली नजर ही नहीं आई।
भोड़ी गली और संकुचित रास्तों को तोड़ कर चौड़ी
क बनाना, छोटे संकुचित मकान को तोड़कर कोठी,
राउण्ड और हवादार बंगले बनाना, छोटे २ रजवाड़ों
जोड़ तोड़ कर बड़े और विस्तृत राज्य कायम करना,
टी को तोड़कर कॉम्यूनिटी बनाना, एक का शासन
: अनेक को सौंपना यानी कौन्सिल असेम्बली और
लियामेन्ट्री सत्ता कायम करना, घरू दुकानात को बन्द
े भण्डारी कायम करना, छोटे और ओछे खयालात

उत्पादन करना, फसलें पुष्ट [illegible] मुनाफा [illegible] करना, और प्रचार करना यही सब कि आकाश और वायु [illegible] गड्ढों से परोपकार की चाह रखकर, यह सब कर्म वायु अग्नि और आकाश तत्व के प्रभावशाली लक्षण हैं।

बेतार का तार, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, हवाई जहाज, फोटोग्राफी, पनडुब्बी जहाज, रेल तार, विज्ञापन, दलालों एजेन्सी, बीमा कम्पनी, टेलीग्राफी तार, मोटर, सैर, सेविंग बैंक, डाक, [illegible] न्यायालय, कौंसिल, [illegible], अखबार आदि सब वायु और आकाश तत्व के कार्य हैं।

जिन मनुष्यों में इन गुणों की प्रधानता पाई जाती है और उपरोक्त काम करके आजीविका करते हैं वही सुखी हो सकते हैं। जो सत्य पर डटकर या अपने बाहुबल और परिश्रम पर भरोसा रखकर सुखी होना चाहता है, वह आजकल कामयाब नहीं होसकता. आज कल के रोजगार सट्टा, फाटका, दलाली, विज्ञापन, इश्तिहारबाजी और खुशामद हैं। यही रोजगार इन तीनों तत्वों के हैं जिनकी आज कल प्रधानता है।

मैं कहां तक जमाने का मीजान कर सकता हूं एक बात बतला दी है जिस पर चलकर प्रचलित तत्वों के गुण प्रत्येक कार्य में जांचे जा सकते हैं। जिन कार्यों में जल व पृथ्वी तत्व के गुण प्रधान हैं उनसे आजकल कुछ फायदा नहीं।

प्राणी ।

प्राण को धारण करने वाले प्राणी कहलाते हैं। वह सृष्टी भी विचित्र है जिसमें अनेक प्रकार के जीव ते हैं, परन्तु सबका ज्ञान होना सांसारिक मनुष्य के ए दुर्लभ है। प्राणी ४ प्रकार के होते हैं (१) जरायुज) स्वेदज (३) अण्डज (४) उद्भिज।

इन सब में जरायुज यानी जरा नाम थैली में जो पैदा होते हैं उनमें से भी मनुष्य उत्तम गिना जाता है परन्तु रे विचार में तो मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार जीवों उत्तम से उत्तम और अधम से अधम होता है। इसी लिये इसका विषय दोनों प्रकार से ही रोचक है, बाकी सब प्राणियों का विषय इसी के अन्तर्गत है।

मनुष्य को इस तत्वों का सम्मेलन कहना चाहिये जिसमें २ चैतन्य और ८ जड़ यानी प्रकृति हैं। चैतन्य का विचार बड़ा और गहन है इस लिए अलग लिखा जायगा। आठ प्रकार की प्रकृति से बने हुए पिण्ड का नाम शरीर यानी देह है जिनमें से पांच तो पूर्व परिचित आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यानी साकार हैं ... चित्त यानी बुद्धि, अहंकार और मन

मनुष्य ।

यह विचित्र प्राणी आज कल संसार में उन्नत दशा में है। मनुष्य की देह के मुख्य विभाग सर, धड़, फड़ और पैर हाथ हैं। सर जरूरी भाग है। इस में धार्य यानी बल है। यही शरीर पर शासन करता है यह राजा है बाकी धड़ राज स्थान है यानी राज्य है हाथ पैर इत्यादि प्रजा हैं। राजा के बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता और राजा का राज्य के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि राज्य न हो तो राजा नाम ही सार्थक नहीं और प्रजा की कमी वैसी हो सकती हैं परन्तु उससे राज नष्ट नहीं होता। राज्य में आंशिक विकार होने पर भी राज्य में खराबी आ जाती है परन्तु हृदू जहाँ सुरक्षित रहता है यानी छाती राज्य में राजधानी है। उस में अधिक विकार राज्य नाश का कारण होता है और स्वयं राजा तो विकारग्रस्त होने से यदि थोड़ा विकार हो तो कुशासन कहलाने लगता है और अधिक विकार राज्य नाश का कारण प्रत्यक्ष है अब इस मनुष्य के देह यानी शरीर रूपी राज्य की शासन पद्धति और गुण क्रिया का भी कुछ विवरण आवश्यक है।

सर ।

सर में तालू के नीचे यानी सामने के विभाग में न्यायालय इत्यादि हैं और बुद्धि न्यायाधीश के अधिकार में

हो तो कोधी कंजूस भी होता है। पार्श्व ऊपर को उठे हु
सुडौल होने से कार्यपटुता अधिक होती है और सर बेडौ
यानी ऊंचा नीचा होने से शरारती और बुरे विचार वाला
होता है। अधिक शरारत और ऐबों का स्थान सर का
पिछला भाग है।

मनुष्य बैठा हो और सामने से सांप आता हो या शेर
की गर्जना सुनाई दे तो आंख या कान के जरिये फौरन मन
यह बात चोटी में पहुँचाता है और वहां से उसी समय
न्यायालय में पेश होकर उचित फरमान होता है कि खतरा
है इसलिए स्थान छोड़ कर भाग जाओ। पार्श्व उसका
प्रचार देही में करते हैं, तब पैर अपना काम करते हैं और
मनुष्य भाग कर अपनी रक्षा करता है। यदि भागने को
मौका न हो और कठिनाई सामने आजाय यानी साधारण
बुद्धि से उचित निर्णय न हो सके तब बुद्धि न्यायाधीश हैं-
बस कारपस के हुक्म जारी करती है जिससे एकदम तमाम
अवयव अपना काम बन्द कर देते हैं जिसको मामूली बोल
चाल में सन्न रह जाना, सन्नाटे में आजाना, कहते हैं और
कभी कभी अधिक जोर पड़ने से बेहोशी और मृत्यु तक
की नौबत आ जाती है, परन्तु इस हुक्म के जारी होते ही
कानून विभाग यानी सर के पिछले हिस्से में खलबली
पड़ती है और कानूनों की बन्द आलमारी यानी बन्द नये
ज्ञान तन्तु खुलते हैं और उनकी सहायता से फिर न्याया-

लय अपना हुक्म लेकर यानी वापिस उठा कर निर्णय जारी करता है। यदि फिर भी कोई उचित मार्ग न निकले तो मनुष्य के मरने की नौबत आ जाती है और दिल की धड़कन बद्द कर बेसुध हो जाता है। जितना दिल कमजोर होता है उतनी ही भय से अधिक हानि होती है, परन्तु इतनी देर में यदि खतरा निकल जाता है तो मनुष्य फिर अपनी साधारण अवस्था में आ जाता है। कभी कभी ऐसी अवस्था में न्याय का खून भी हो जाता है। उलट पुलट काम भी इन्द्रियां कर डालती है और मनुष्य पागल भी हो जाया करता है। मिसाल एक नमूना है पूर्ण व्याख्या बुद्धिमान खुद कर लेवे।

शरीर में विचार संघर्ष, सेवा, अधिक निर्णय से गर्मी पैदा होकर ज्ञान तन्तु जो बन्द होते हैं उनका मुख खुलता है। जिसको अधिक विचार करना पड़ता है, उसके अधिक ज्ञान तन्तु खुले होते हैं और वह बुद्धिमान हो जाता है और जिन्हें विचारने का काम कम पड़ता है, उनकी ज्ञान वृद्धि नहीं होती।

एक मजदूर जो सड़क कूटता है उसको सड़क कूटना, अपनी जरूरियात से मतलब है या खाने आराम करने से। इसलिए उसके अवयव बलिष्ट होते हुए भी साधारणतया उस में निर्णय शक्ति कम होती है और रात दिन विचार . होती है।

पेट ।

मनुष्य की देह में यह भाग या शिविर है। जो वस्तु मनुष्य खाता या पीता है वह इसके अन्दर पहुँचती है। इसमें पहले भाग यानी पुरखी के भीतर एक थैली है जिसको मेदा कहते हैं, उस में जाती है और उसके चारों तरफ गर्मी होती है जिसको जठराग्नि कहते हैं। उस अग्नि से उस वस्तु का परिपाक होकर रस एक तरफ और मैल एक तरफ हो जाता है और हर दम यह क्रिया जारी रहती है। यह रस पहले लिवर में जाकर शुद्ध होता है और शुद्ध रस तिल्ली यानी प्लीहा में जाकर रंग बदलता है और पीला हो जाता है। शुद्ध होता है और उसका गन्दा रस या मैल पेशाब की थैली में चला जाता है या फिर शुद्ध होने लिवर में चला जाता है। तिल्ली से पीला रस जब दिल में जाता है तो यहाँ पर पतला लाल रुधिर बन कर साफ होता है और नस नाड़ियों में चला जाता है और कार्य करता रहता है। अशुद्ध हो जाने पर यह काला और गाढ़ा हो जाता है जिस में नया पनजा रुधिर दिल से जाकर शामिल होता है और फेफड़ों से हवा का ओक्सिजन पहुँच कर फिर उसको शुद्ध कर देता है और ओक्सिजन के मिलते समय शरीर में गर्मी पैदा होती है और उचित रीति से कार्य चलता रहता है। गर्मी पहुँचने से जो रुधिर दूर रहता है उसका मांस बन जाता

है। यही कारण है कि जिस मनुष्य में गर्मी अधिक होती है वह मोटा नहीं हो सकता।

यही रुधिर दिमाग में पहुंचता है जहां पर अधिक गर्मी होती है, तो मज्जा (भेजा) बनाता है। शुद्ध मांस से चर्बी यानी तेल होता है और शुद्ध मज्जा से वीर्य्य बनता है। और इसकी शासन प्रणाली इस किस्म की है कि जिस चीज की आवश्यकता होती है वह जल्द तैयार हो जाती है। फौरन ही अपने स्थान पर जहां जरूरत होती है हाजिर मिलती है।

जब शरीर में चोट लग कर या और किसी वजह से घाव हो जाता है तो पाचन शक्ति प्रबल होकर जो वस्तु खाई पी जाती है उसको हजम करके जहां पर घाव होता है रुधिर बना कर जल्दी से जल्दी वहां पहुंचाती है और बहुतसी तेज़ी देती है कि घाव आने पर तमाम बदन का रुधिर बाहिर फेंक देती है।

पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड की समता।

पिण्डाण्ड शरीर को कहते हैं। जो वस्तु ब्रह्माण्ड में है वही इस में भी मौजूद है, नाम का भेद है। फिरक नहीं है।

ब्रह्माण्ड में आकाश और वायु अधिकतर ऊंचे रहते हैं इसी प्रकार आकाश और वायु सर में मौजूद है। दूसरे-मत यानी भूगरुत के पास पास आकाश में वायु देश में

चलती है इसी प्रकार धड़ में फेफड़े में प्राण वायु का और है। पानी और पृथ्वी बराबर या एक दूसरे के नीचे ऊपर जिस प्रकार से भूपटल पर रहते हैं उसी प्रकार इन का स्थान शरीर में भी है। अग्नि जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सर्वत्र है उसी प्रकार शरीर में भी सर्वत्र मौजूद है। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में पांचों तत्व मिल कर काम करते हैं इस में भी करते हैं। योग शास्त्रों में और भी अधिक समानता इन में दिखलाई गई है।

शरीर में हाड़ है, ब्रह्माण्ड में पहाड़ हैं, शरीर में रस रुधिर है, ब्रह्माण्ड में जल है, शरीर में रस रुधिर नस नाड़ियों में बहता है, तो उस में नदी नालों में बहता है, शरीर में पेशाब की थैली और मल है उसी प्रकार उस में समुद्र अर्थात् जल और स्थल मौजूद हैं। इस में वीर्य से सर्व प्रकार की धातु बन सकती है तो उस में महावीर्य (पारद) से सब धातु बन सकती है। सूर्य, चन्द्र भी बायें दायें अंग में शरीर में काम करते हैं यहां तक कि ईश्वर भी दोनों में सर्वत्र मौजूद है।

वृक्ष, वनस्पति, बाल और रूवां हैं पसीना वर्षा है जो गर्मी के बाद आती है। शरीर में गर्मी और ब्रह्माण्ड में बिजली या ज्वाला है। भूगर्भ में अग्नि मगदार की तरह शरीर में जठराग्नि है। वर्षा से प्राणी उत्पन्न होते हैं यानी चतुर्मासे के जीव, इसी प्रकार पसीने से जूं बनती है।

जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में अणु परमाणु हैं उसी प्रकार शरीर में भी हैं और दोनों जगह उन में बराबर परिवर्तन होता रहता है।

यह सब बातें देखने से सृष्टिकर्त्ता के विचित्र रूप बड़े मनोहर ज्ञात पड़ते हैं। यह सब तो पांच भौतिक तत्वों की लीला है और इस में भी जो परिवर्तन इनके सूक्ष्म रूप में होते रहते हैं, वह हमारी इन्द्रियों से अगोचर होने के कारण उन से हम लोग परिचित नहीं हैं वह और भी मनोहर होंगे।

मूल तत्व।

परब्रह्म।

सृष्टि के दो विभाग हैं चैतन्य और जड़। चैतन्य समूह का नाम ईश्वर और जड़ समूह का नाम महत्व है। जिस प्रकार गरम लोहे से चिनगारियां निकलती हैं उसी प्रकार ईश्वर से जीव की उत्पत्ति होती रहती है।

जिस प्रकार सूर्य एक है परन्तु अलग अलग बरतन में जल डाल कर रख देने से सब में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। इसी प्रकार जीव और ईश्वर का भेद जाहिर करने के लिए मिसालें दी जाती हैं। परन्तु मेरा विचार इस से

चौथा विकृति जीव है जो शरीर में विकार होने पर प्रगट होता है। और अभिमानी कहलाता है।

अभिमानी जीव के देह सम्बन्ध छोड़ने पर शक्ति सर्व प्रकार के जीव निरर्थक हो जाते हैं और स्थूल का परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। जीव के गुण यहीं बतलाये गये हैं कि जो ईश्वर के गुण हैं।

ईश्वर के गुण सत्य, विज्ञान, आनन्दरूप होता है। सत्यं विज्ञानमानन्दम् ब्रह्म। अनादि और अनन्त है। निराकार और निर्विकार है। सर्वशक्तिमान है।

प्रकृति।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

प्रकृति में आठ तत्त्व शामिल हैं पांच स्थूल और तीन सूक्ष्म आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी स्थूल तत्त्व हैं बुद्धि, मन और अहंकार सूक्ष्म तत्त्व हैं। इन आठों को मिलाकर एक नाम दिया है।

जब जिस का सम्बन्ध जीव से रहता है, तब चित्त चेतनवत् हो जाता है और चेतन्य के गुण उसमें आ जाते हैं। साकार रूप तो चेतन्य जीव ही है, परन्तु कार्य उसका

चित्त चैतन्य है। जिस प्रकार राज्य का मन्त्री राजा के सब काम स्वयं राजा के नाम से करता रहता है और सब कुछ का भार राजा पर है, राजा यदि नाराज हो तो मन्त्री दूसरा रख सकता है, परन्तु शरीर राज्य का शासन इस प्रकार का है कि बजाय मन्त्री बदलने के राजा को कुलपन्थ होने से देश पलटना पड़ता है और मन्त्री की करतूत जानते हुए भी फिर उसी पर विश्वास कर बैठता है यही विचित्र पोली है।

चित्त चैतन्य ।

सत्य, ज्ञान और आनन्द यह गुण तो चैतन्य के हैं परन्तु चित्त चैतन्य में भी ज्ञान, आनन्द, विस्तार, प्रका॰ प्रकाश, आकर्षण, प्रेम ये गुण हैं और बुद्धि में निर्णय शक्ति, अहंकार में क्रिया और मन में संशय का गुण भी है और यह तीनों एक दूसरे की अनुपस्थिति में उनका प्रयोग भी कर सकते हैं। यानी स्वतंत्रता से भी काम में लाते हैं। जैसे बुद्धि स्वप्नावस्था में भी विचार करती रहती है अहंकार बेसुध होने पर भी देही का संचालन करता रहता है और मन, यह तो विचित्र बला का है, कहां से कहां चला जाता है और क्या से क्या कर दिखाता है। जब इन की कौन्सिल होती है तो अहंकार प्रेरणा करता है और बुद्धि निर्णय करती है परन्तु मन अहंकार से मिलकर बुद्धि के निर्णय को ठुकरा देता है जिस से अहंकार या तो मनुष्य

को क्रोधित करके अन्धा बना देता है या भयातुर, शोकान्वित कर के निश्चेष्ट कर देता है और मनुष्य मार्गच्युत हो कर क्या से क्या कर बैठता है। इसी लिये बड़ों का कहना है कि "मन लोभी मन लालची, मन चञ्चल मन चोर। मन के मते न चालिये, पलक पलक मन और॥" पांच प्रान तत्वों के गुण, विस्तार, प्राण, प्रकाश, प्रेम और आकर्षण के अलावा और भी अनेक हैं जैसे उत्ताप, परिवर्तन, सम्मेलन, निराकरण, मिश्रण विदीर्ण उत्पादन, वृद्धिकरण, धारण इत्यादि।

अहंकार की प्रेरणा से मन इन्द्रिय से चित्त का संयोग करता है और बुद्धि से इन्द्रिय का संयोग करता है तब यदि नेत्र के साथ संयोग हुआ तो चित्त का प्रकाश यानी प्रतिबिम्ब नेत्र तक लाकर बुद्धि तक पहुंचाता है और नेत्र से बाहर जिस वस्तु को चित्त देखना चाहता है उस वस्तु का चित्र सांगोपांग चित्रपट पर लाते हुए अन्दर हृदय तक लेजाता है और जब बुद्धि अच्छी तरह उस वस्तु का निर्णय कर लेती है तो उसका सूक्ष्म रूप रखकर अपने अन्दर सब कर चित्रपट से चित्र मिटा देता है और फिर कभी जरूरत पड़ने पर वही चित्र बुद्धि के सामने पेश कर सकता है।

चित्र के प्रकाश का यह नियम है कि ज्यादा प्रकाश अधिक तो संकुचित होजाता है और कम हो तो विस्तृत हो जाता है यही कारण है कि अधिक रोशनी देखने से

अन्धेरे में जाने पर दिखाई कई देर तक नहीं देना जब तक कि बाहरी प्रकाश या अन्तर प्रकाश में सम्मेलन न हो जावे।

मन संकुचित और विस्तृत होता है और साधारण नियम के अनुसार जब संकुचित होता है तब घनीभूत भी होता है और विस्तृत होने पर सूक्ष्म रूप हो जाता है।

सात तत्वों का नियम है कि जब यह संकुचित अवस्था में होते हैं और घनीभूत होते हैं यहां तक कि सिवाय आकाश के जो दिखाई नहीं देता, बाकी तत्व घनीभूत होने पर उनका भार भी बढ़ जाता है और जबतक इन्द्रिय से जानने योग्य है उन का प्रगट रूप कहलाता है, और जब विस्तृत होकर इन्द्रिय से अगोचर हो जाते हैं, तो उन की यह अवस्था सूक्ष्म रूप कहलाती है। दर असल सूक्ष्म नाम ही विस्तार रूप का है।

मन भी इन्द्रिय कहलाता है क्योंकि घनीभूत होने पर यह इन्द्रिय की शक्ति बढ़ा देता है। साधारण यानी स्वाभाविक मन का घनत्व जितना हो सकता है उससे अधिक अभ्यास करने और अहंकार का दबाव डालने से हो सकता है और यह भी योग का एक अंग है। नियमित रूप से मन को दबाव डाल कर घनीभूत करने को ही ध्यान कहते हैं। जिस प्रकार अंगार और हीरा एक ही वस्तु है। अंगार का खेल थोड़ी देर में खतम हो जाता है, परन्तु हीरा कठोर और मूल्यवान पदार्थ बन जाता है और इस व—

पारस समझिये। यह सब कुछ है और लोगों को मालूम है परन्तु मन का हीरा बनाना कितना कठिन है, बाप रे, बाप रे !!! उसके लिये कितने त्याग और परिश्रम की आवश्यकता है और सब से बड़ी बात तो यह कि मन को रोकने, दबाने के लिये संसार के कितने ही सुखों से, जोकि भाग्य से परियाप्त हैं, हाथ धोना पड़ेगा। मन ऐसा भला-मानुष भी तो नहीं है कि जो सहज में उस पर काबू पाजावो। इसके अलावा मन पर अकेले पर अधिकार जमाने के लिये इनकी कौन्सिल यानी चित्त को और अहंकार बुद्धि को भी काबू में लाना पड़ेगा नहीं तो ये उसकी सहायता करके आजाद कराने से कभी नहीं चूकेंगे।

ऐसे कठिन काम के लिये ईश्वर की शरण और विपाक की सहायता बिना भी काम नहीं चलेगा और सहायता देने वाला विपाक बड़ी भारी उग्र तपस्या के बिना नहीं हो सकता और बीच बीच में कर्मों का भोग भी भोगना पड़ेगा, कि जो मनुष्य को किसी कार्य में प्रवृत्त कराने या उससे निवृत होने में कठिन बाधा उपस्थित कर दिया करते हैं।

इन्द्रियों का स्वभाव है कि वह अधिक परिश्रम से थक जाती हैं और विश्राम चाहने लग जाती हैं, यहां तक कि बुद्धि और शरीर भी अधिक परिश्रम से थक कर शान्ती लाभ चाहते हैं, परन्तु मन को कभी थकते नहीं देखा। इन्द्रियें वृद्ध या रुग्ण अवस्था में शिथिल हो जाती हैं परन्तु मन का

—थिल होना तो दूर किनार उल्टा चञ्चल हो जाता है। मन —ाता है, मन रुलाता है। मैं इसी लिये इसकी विचित्रता का —ान रख कर इन्द्रियों में इसको शामिल करना नहीं चाहता।

— कभी कभी यह मनुष्य की सहायता भी करता है कि —ब मनुष्य किसी दुख से दुखित यानी शोकाकुल हो रहा —ो तो कोई नवीन वस्तु देख कर या सुन कर फौरन दुख भुला कर मनुष्य को हंसा देता है।

मेरे ख्याल में मन, बुद्धि और अहंकार जड़ और चेतन सब वस्तुओं में है परन्तु जीव विहीन पदार्थ में यह तीनों होते हुए भी वह चित्त चैतन्य नहीं हो सकता, इसी लिये इनकी क्रिया जाहिर नहीं होती। जैसे कि चम्बुक लोहे प्रत्येक लोहा चम्बुक की यानी और यह शक्ति उसी लोहे में क्रिया विधान

स्पति में भी से बराबर में है और स्नेह राजपत्नी का हार और मन न आना और

न

भूल ।

जीव तो सतचित आनन्द घन है और प्रकृति जड़ है उस में भूल होती कैसे सकती है क्योंकि कोई मशीन इंजिन जब तक उस में विकार न उत्पन्न हो उसमें भूल नहीं हो सकती, वह ठीक तौर पर बराबर काम देते रहते हैं, फिर इस भूल का कारण क्या है ?

चूंकि मनुष्य मात्र जीव और प्रकृति का सम्मेलन गिने जाते हैं और जड़ और चैतन्य एक दूसरे से विपरीत गुण रखते हैं । इस लिये आग पानी का मेल नहीं हो सकता। जीव नित्य है, आठों तत्व अनित्य यानी नाशवान हैं। इनका सम्मेलन समझ कर ही आदमी भूल करता है। जब जड़ में ही भूल है तो उस से भूल वृत्त पैदा होगा।

आप कह सकते हैं कि फिर तो प्रत्येक काम में भूल होनी चाहिये और इस बात को कहा ही नहीं जा सकता कि किसी समय मनुष्य भूल नहीं करता। परन्तु मन, बुद्धि और अहंकार तीनों जीव से कुछ अंश में समानता का भाव रखते हैं यानी दोनों निराकार हैं, इस लिये जीव से सामिप्यता रखते हैं और इनका मजमूआ चित्त भी जीव की सामिप्यता से इसी लिये चैतन्य हो जाता है और इधर अनित्य होने की वजह से और जड़ होने के कारण बाकी पांचों तत्वों में मिलते रहते हैं, बल्कि आकाश तो निराकार

ँ ही और बाकी चार भी सूक्ष्म रूप हो जाने पर निराकार कहलाने लगते हैं। इस लिये बुद्धि की सहायता से जो अहंकार और मन की जननी है, मनुष्य कुछ सत्य पालेता है परन्तु भूल अधिक और सत्य कम। इसलिये पाठकगण से प्रार्थना है कि इस पुस्तक में मैंने मेरे विचारमात्र प्रगट किये हैं। यदि आप को इन में कोई भूल मालूम दे तो उसके लिये मनुष्य का स्वाभाविक गुण समझ कर क्षमा करेंगे।

सत्य।

संसार स्वप्न देखने लग जाता है। जिस प्रकार टॉकी सिनेमा में बैठा मनुष्य अपने आप को भूल जाता है और यह ही समझने लग जाता है कि उसके सामने जो कुछ हो रहा है, सत्य है और उस पर वाद विवाद भी करता है और हाव भाव भी बदलता है और उससे प्रभावित होता है। उस वक्त यह नहीं समझता कि इससे कुछ होना जाना नहीं है, सिनेमा घर के बाहिर निकलने पर कुछ नहीं। जब इस बात को समझता है कि मैं कौन हूँ और यहाँ बैठा क्या देख रहा हूँ, तो सब कुछ समझ जाता है कि स्वप्न स्वप्न की तरह देख रहा है। मन जिस प्रकार स्वप्न में लीन होकर स्वप्न को सत्य बोध कराने लग जाता है, उसी प्रकार जाग्रत में संसार में लीन होता है, तब संसार का सत्य बोध कराने लग जाता है और सिनेमा में लीन होता है, तो सिनेमा का सत्य बोध कराता है परन्तु भेद कुछ भी नहीं है। इनमें से कोई भी सत्य नहीं है। जब ज्ञान में मन लीन होता है, तो अज्ञान का पर्दा हट जाता है और संसार सिनेमावत दिखाई देने लग जाता है, अपना पराया कुछ नहीं है। संसार में जो सूक्ष्म परिवर्तन पल पल पर होता रहता है, वह दिखाई देने लग जाता है और सब दृश्य क्षण भंगुर और मिथ्या प्रतीत होते हैं। एक परमात्मा ही सत्य है जिसमें किसी देश और किसी काल में कोई भी परिवर्तन नहीं होता और जो अनादि और अनन्त है।

शक्ति समालोचना ।

प्रत्येक वस्तु की पांच अवस्था होती हैं (१) शान्त (२) वायवीय (३) परिवर्तनकारी (४) द्रव (५) ठोस ।

(१) शान्त उस अवस्था का नाम है जो विकार रहित बिना मेल होती है और जब उसके परमाणु फैल कर विस्तृत अवस्था में रहते हैं और दिखाई नहीं देते इसी का नाम तत्व का सूक्ष्म रूप है। यह अवस्था स्वतन्त्र होती है। इस में मन बुद्धि और अहंकार का मिथया और उनकी क्रिया होने से शान्त अवस्था नष्ट होकर विकम्पित अवस्था हो जाती है। और वायवीय रूप धारण करते हैं तब विकम्पन से शब्द प्रगट होता है।

(२) वायवीय अवस्था में संकोचन और विस्तीर्ण होता है। जिससे आकर्षण और विदीर्ण शक्ति की उत्पत्ति होती है। बारम्बार आकर्षण और विदीर्ण का ही नाम संघर्षण है और संघर्षण उष्णता, तड़ित, और अग्नि पैदा करता है और इन्हीं के वेग से प्रकाश उत्पन्न होता है।

(३) प्रत्येक वस्तु का परिवर्तन अग्नि से होता है यानी उष्णता प्रकाश और दबाव ही मुख्य परिवर्तनकारी हैं। अग्नि यानी अनल के मुख्य दो भाग हैं-एक तड़ित, दूसरा

विद्युत। सदिग घर्षण से पैदा होने वाली बिजली का नाम है और विद्युत रसायन से पैदा की हुई बिजली का नाम है। साधारण बोल चाल में बिजली का संकुचित अर्थ लिया जाता है और उसकी उन स्रोण अवस्था की गणना नहीं की जाती कि जिस में प्रकाश और उष्णता इन्द्रिय की साधारण शक्ति से जानी नहीं जा सकती। इसी लिये इनका सामूहिक नाम अनल कहा गया है। अनल के दबाव, प्रकाश, और उष्णता की कमी वेशी से और आकर्षण और विदीर्ण शक्ति की सहायता से वायु में परिवर्तन होकर अनेक प्रकार के गैस उत्पन्न होते हैं और इन्हों की कमी वेशी और सम्मिश्रण से तरल पदार्थ नाना प्रकार के बन जाते हैं। विच्छेदन या प्रथककरण शक्ति भी यही है।

(४) तरल पदार्थ शीत दबाव और प्रकाश की कमी से ठोस बन जाते हैं और ठोस बनते समय प्रत्येक वस्तु में आकर्षण शक्ति रहती है और संकोचन होता है। उष्णता की सहायता से भी जलयुक्त पदार्थ ठोस होते हैं तब उनमें जो मात्रा जल की होती है वह वायु का रूप धारण करके प्रथक हो जाती है। जल आकार वृद्धि करना भी है और सम्मेलन और सम्मिश्रणकारी है जिससे आकार वृद्धि रूपी परिवर्तन होता है।

(५) ठोस संकुचित यानी छोटे आकार का नाम है। इसको स्थूल और प्रगट रूप भी कहते हैं। यह अनल और

दबाव से सरल होता है और दबाव हटने पर वायवीय रूप धारण कर लेता है। अनल दबाव को हटाती है, यानी बलात् आकार वृद्धि करती है। प्रत्येक वस्तु उष्णता की कमी बेशी से ठोस सरल वायवीय और शान्त अवस्था धारण करती है जिसका प्रधान कारण अनल ही है और अवस्था बदलने को ही परिवर्तन कहते हैं। और एक अवस्था का अपूर्ण होने से दूसरी अवस्था होती है।

शब्दार्थ।

हमारे रात दिन व्यवहार में आने वाले शब्द कल्पित और कृत्रिम हैं। इसीलिये देश देशान्तर में अनेक भाषा प्रचलित हैं और मनुष्य मात्र की भाषा अलग अलग हैं। जीव जन्तु भी अलग अलग शब्द उच्चारण करते हैं और हमारे भाषा का काम लेते हैं जिनके उच्चारण का भेद असाधारण मनुष्यों की बुद्धि से परे है। अनेक जीव तो हमसे और शब्द करते हैं जिनका कान सुन भी नहीं सकते और अनेक जीव ऐसे हैं जो हमारे सुनने लायक शब्द उच्चारण करते हुए भी इतने तीव्र उच्चारण करते हैं कि उनके उच्चारण का भेद हम मालूम नहीं कर सकते और उनकी अन्तर हमको एक ही स्वर से सुनाई दिया करते हैं। इसलिये जानना तो अत्यन्त कठिन है परन्तु इतना अवश्य समझना होगा कि शब्दों से वर्ण बोध कराने का रीति अवश्य है

और वह अर्थ भी हाव भाव और स्वर के भेद से उसके उच्चारण करने वाले की आकृति पर निरभर होता है। इसीलिये कहना पड़ता है कि किसी शब्द का कोई निश्चित एक ही अर्थ नहीं है। प्रत्येक प्राणी प्रत्येक शब्द अपने इच्छित अर्थ से व्यवहार करता है और उस अर्थ के लिये एक कल्पित सीमा भी निर्धारित कर लेता है। जिस प्रकार उष्णता (गर्मी) की सीमा इस प्रकार निर्धारित की गई है कि जिस उष्णता में बरफ पिघलने लगती है, उस अवस्था से लेकर जब पानी वाष्पीय रूप धारण करता है, उस अवस्था तक उष्णता के १०० विभाग किये गये हैं और उनको डिग्री नाम दिया गया है परन्तु हमारे शरीर की साधारण उष्णता को ९८॥ डिग्री गर्मी कहना पड़ता है। इसलिये यह विभाजन ठीक नहीं है। प्रत्येक वस्तु की साधारण उष्णता की सीमा अलग अलग होती है और जब हमारे सामने गरम पानी और जलती हुई अग्नि दोनों होते हैं, तब यह कह देना बेजा या गलत नहीं कि अग्नि के मुकाबले में पानी ठंडा है और यहां पर ठंडा शब्द ठीक अर्थ के लिये प्रयोग किया गया है। वास्तव में ठंडा और गरम दोनों का मूल अर्थ एक ही है। यानी ठंडक की कमी का नाम गरम है और गर्मी की कमी का नाम ठंडा है, दोनों एक ही पदार्थ के नाम हैं। इसी प्रकार गणित में संख्या की निर्धारित सीमा शून्य (बिन्दी) है, उससे कम होने पर (−) चिन्ह प्रथम लिख कर प्रगट कर देते हैं और

अधिक होने पर (+) चिन्ह भी व्यवहार में लाना पड़ता है। परन्तु सीमा सब कृत्रिम है, मनुष्यों की निर्धारित की हुई ही है, कुदरती नहीं।

इसी प्रकार प्रकाश की कमी का नाम अन्धकार है और अन्धकार की कमी का नाम प्रकाश है। यदि हम प्रकाश की [illegible] करना चाहें तो किसी को [illegible] अधिक और जानवरों का [illegible] १०० कोस का दिखाई देता है और बिल्ली को रात्री में भी दिखाई देता है। उल्लू और चिमगादड़ को दिन में दिखाई ही नहीं देता बल्कि रात्री में दिखाई देता है।

शीतोष्ण के लिये भी यही बात है कि कोई वस्तु ठंडक से ही अपने असली रूप में रह सकती है, शीत कम होने पर तरल हो जाती है, तरल हो या वाष्पीय और कोई वस्तु साधारण उष्णता से पिघलती है या कोई अत्यन्त उष्णता पाकर तरल रूप धारण करती है। मनुष्यों ने अपनी सुविधा के लिये परिवर्तन जाहिर करने के अभिप्राय से सीमा निर्धारित करली है।

इसी प्रकार आकर्षण + विकर्षण, संकोच + प्रसार-करण, आदि शब्द हैं। काल मान भी निर्धारित है और पाप पुन्य भी इसी श्रेणी में आते हैं और कल्पना को अलग रख देने से दोनों का एक नाम हो जाता है जिसे कर्म

रूप पर विशेष असर पड़ता है। गति कम और दबाव अधिक होने पर घनीभूत हो जाती है।

५. खट्टी वस्तु उष्णता से फीकी होती है और उसका रंग पीले से श्वेत हो जाता है और मीठी वस्तु जो श्वेत या लाल रंग की होती है, उष्णता से पीली और खट्टी हो जाती है और फीकी और श्वेत रंग वाली वस्तु उष्णता पाकर काली और कषाय या खारी हो जाती है। थोड़ी गर्मी मीठे को खट्टा और पीला और उससे अधिक गर्मी मीठे को फीका और श्वेत और उससे अधिक गर्मी काला और कड़वा बनाती है यानी गर्मी से रंग और स्वाद साथ २ परिवर्तित होते हैं।

६. जल वस्तु की स्थूलता यानी भार बढ़ाता है और अग्नि आकार बढ़ाती है। वायु शोषण करता है। आकाश आकार बड़ा कर हलका करता है।

७ आठों प्रकार की प्रकृति मिल कर प्रत्येक वस्तु का आपूर्ण करती है जिससे परिवर्तन होता है। जिनको हम जड़ पदार्थ कहते हैं, उनका आपूर्ण प्रकार दबाव और उष्णता से होता है।

प्रत्येक एक प्रकृति प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन करने में लगी रहती है। यह परिवर्तन स्वाभाव और प्रत्यक्ष रूप से होता है उसके जानने के लिए हम समझे हैं और यह जल्दी होता है एर समय में उन्हीं

बन्धन कहते हैं। कर्म बन्धन पाप कर्म से भी होता है और पुण्य कर्म से भी होता है।

समय की सीमा हम सूर्य के उदय अस्त से निर्धारित करते हैं परन्तु स्वप्न में क्षणभर में अनेक वर्ष व्यतीत हो जाते हैं और हमारी समय की कल्पना कल्पना मात्र रह जाती है। कुदरती चीज बन्धन है जो प्रत्येक वस्तु और प्राणी के लिये एक है।

प्राकृतिक नीयम।

१. अनल अधिक होने से प्रकाश बढ़ता है और कम होने से अन्धकार। रस अधिक होने से सम्मिलन बढ़ता है और कम होने से प्रथककरण। गंध अधिक होने से भार कम होता है और गंध कम होने से भार अधिक।

२. अनल अधिक होने से उष्णता बढ़ती है और कम होने से शीत। गंध बन्धन सहित होने से कम मालूम देती है और बन्धन ढीला होने से फैलती है। इसी प्रकार बन्धन सहित सब पदार्थ सीमित रहते हैं।

३. सुगंध उष्णता में अधिक दूर जाती है और दुर्गंध शीत में।

४. रस के साथ गंध मिली हो और तरल रूप है तो शीत पाकर बढ़ती है यानी स्थिर रहती है। दबाव ध

था जाता है जो शनैः शनैः होता है, वह परिवर्तन विचार-
शील मनुष्य जान सकता है और जो परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप
में होता है वह भी यन्त्रों द्वारा या ध्यान से जाना जा सकता
है। परन्तु जो परिवर्तन अस्मिता मात्रा यानी पाँचों तत्वों के
सूक्ष्म रूप से और अप्रत्यक्ष होता है, वह इन्द्रियों की विशे-
यानी प्रकृति शक्ति बिना जाना नहीं जा सकता और यह
विशेष शक्ति बिना योग के बताये मार्ग के प्राप्त नहीं हो
सकती। प्रकृति के नियम भी अनेक हैं, कहाँ तक लिखा जाये

शक्ति का विकाश।

बिजली जब प्रगट होती है, तब पहले शब्द फिर गति
और गति से दबाव और दबाव से उष्णता और उष्णता
से प्रकाश उत्पन्न होता है। वायु का वायु के साथ संघर्ष से
पृथ्वी का पृथ्वी के साथ संघर्ष होने से जो उष्णता उत्पन्न
होती है, वह तड़ित् कहलाती है।

तरल पदार्थ के संयोग से जो उष्णता उत्पन्न होती
उसका नाम विद्युत है। और ज्वलन शील पदार्थ के जल
से जो उष्णता उत्पन्न होती है उसको अग्नि कहते हैं। इ
तीनों के भी अनेक भेद हैं कि जो काल के संयोग से हो
हैं और उनके अलग २ नाम दिये जा सकते हैं।

प्रत्येक सम्मेलन या संघर्षण से शक्ति की उत्पत्ति हो
रहती है, परन्तु अधिक काल के संयोग से ...

था जाता है जो शनैः शनैः होता है, वह परिवर्तन विचारशील मनुष्य जान सकता है और जो परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप में होता है वह भी यन्त्रों द्वारा या ज्ञान से जाना जा सकता है। परन्तु जो परिवर्तन अस्मिता मात्रा यानी पाँचों तत्वों के सूक्ष्म रूप से और अप्रत्यक्ष होता है, वह इन्द्रियों की विशेष यानी वृद्धित शक्ति विना जाना नहीं जा सकता और वह विशेष शक्ति विना योग के बनाये मार्ग के प्राप्त नहीं हो सकती। प्रकृति के नियम भी अनेक हैं, कहाँ तक लिखा जावे।

शक्ति का विकाश।

विजली जब प्रगट होती है, तब पहले शब्द फिर गति और गति से दवाव और दवाव से उष्णता और उष्णता से प्रकाश उत्पन्न होता है। वायु का वायु के साथ संघर्ष से, पृथ्वी का पृथ्वी के साथ संघर्ष होने से जो उष्णता उत्पन्न होती है, वह तड़ित् कहलाती है।

तरल पदार्थ के संयोग से जो उष्णता उत्पन्न होती है उसका नाम विद्युत है। और ज्वलन शील पदार्थ के जलने से जो उष्णता उत्पन्न होती है उसको अग्नि कहते हैं। इन तीनों के भी अनेक भेद हैं कि जो काल के संयोग से होते हैं और उनके अलग २ नाम दिये जा सकते हैं।

प्रत्येक सम्मेलन या संघर्षण से शक्ति की उत्पत्ति होती रहती है, परन्तु अधिक काल के संयोग से या मात्रा की

पर दबाव घटता बढ़ता रहता है, अधिक दबाव से शीत बढ़ता है और दबाव की कमी से उष्णता। हमारे शरीर पर भी वायुमन्डल का दबाव है।

दबाव साधारणतया दो प्रकार का होता है। एक प्राकृतिक शक्ति से जैसे गति से या भार से होता है दूसरा मानसिक या शारीरिक बल से। शीत पाकर जो संकोचन होता है उसको तो स्वभाविक दबाव कहना चाहिए और गति या बल से जो दबाव होता है वह सहायक है।

स्वभाविक दबाव उस पदार्थ की शक्ति है और स्वतंत्र है और सहायक दबाव कृत्रिम है और परतन्त्र है। स्वभाविक दबाव प्रत्येक पदार्थ का बल है। बल नष्ट होने पर वायु गति को, आकाश दबाव को, अग्नि उष्णता और प्रकाश को, जल शीतलता को, और पृथ्वी आकर्षण शक्ति को त्याग देती है। जिसको लय होना तत्व का कहा जाता है। प्रलय भी इसी प्रकार होती है। बल सहित होने से सजीव कहलाते हैं। परन्तु जब तक एक तत्व में दूसरे तत्व मिले रहते हैं चाहे सूक्ष्म रूप में हो चाहे प्रगट रूप में, तब तक उनका स्वभाविक बल किसी न किसी मात्रा में बना रहता है और कभी २ हम बल की कमी को ही बल का नष्ट हो जाना कह दिया करते हैं, या बल की इतनी कमी हो जाती है कि हमारी दृष्टी में उनका बल नहीं आता है ... का

कमाना, खर्च करना गृहस्थ साधन की सभी बातें शामिल हैं जिन से स्वास्थ बना रहे, स्वार्थ सिद्ध हो और दूसरों को नाहक कष्ट न उठाना पड़े।

परोपकार या दूसरों के लिये सुखकर कर्म प्रशंसनीय है और अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के हानि लाभ पर ध्यान न देना निन्दनीय होता है। जिन कर्मों से जन समूह को भय या हानि पहुंचे वह घोर कर्म अत्यन्त निन्दनीय हैं। प्रशंसनीय और निन्दनीय दोनों ही कर्म बन्धन करते हैं। इसलिये मोक्ष चाहने वाले दोनों का त्याग करें।

किसी प्रकार से अपनी आत्मा को कष्ट या घृणा नहीं होनी चाहिये। नाही आत्मा की अवहेलना करके उसको दुखित करना चाहिये। आत्मप्रवञ्चक को आत्महनन का दोष लगता है। अवहेलना करने से आत्मा अपना स्वभाव त्याग देता है। आत्मा का स्वभाविक गुण है—मनुष्य को पाप से बचा कर सत्य मार्ग पर चलाना। उदाहरणार्थ देखिये जब आत्मा सबल और निर्मल होती है तब हमको सत्य पथगामी बनाती है और कुमार्ग में जाने से रोकती है। चोर जब प्रथम चोरी करता है या जब मनुष्य प्रथम कोई दुराचार करने जाता है तो उसको कितना भय लगता है, लज्जा मालूम देती है, आत्मा उस काम के करने से मना करती है। परन्तु ज्यों ज्यों वह आत्मा की अवहेलना करके वैसा कर्म अधिक करता है, उसकी आत्मा सदाचारिन

करना। यदि वह यह कर्म छोड़दें तो चोर चोर ही नहीं कहला सकता। कई पीढ़ी तक एक ही कर्म करते रहने से वह उसकी जाति बन जाती है और कर्म छोड़ देने के बाद भी उसके पीछे लगी रहती है। उसका पिन्ड नहीं छोड़ती। कर्म जितना ही उग्र होता है। उतना ही जल्दी जाती कहलाने लगता है।

धर्म अधर्म के निर्णय में उस जगह कठिनाई पड़ती है जहां पर एक ही कर्म में प्रशंसा और निन्दा दोनों शामिल हों। तब यह विचारना चाहिये कि अधिक सत्य पुरुष निन्दा करते हैं या प्रशंसा, और उसी के आधार पर धर्म अधर्म का निर्णय करना चाहिये क्योंकि दुराचारी पुरुषों की आत्मा तो निर्बल होने के कारण वह बिना विचारे निन्दा या प्रशंसा करने लग जाते हैं।

कहीं कहीं पर रूढ़ी और धर्मशास्त्र कथित विपरीत होने का विवाद उपस्थित होता है। तब निर्णय करने के लिये अपनी आत्मा का सहारा लेना चाहिये। यदि स्वस्थ स्थिति में आत्मा रूढ़ी ग्रहन करे तो रूढ़ी धर्म है और शास्त्र का मत ग्रहण करे तो शास्त्रोचित धर्म है।

जिस कर्म के करने से विवाद कलह शारीरिक हानि उपस्थित होने की सम्भावना हो, वह दुनिया के नजरों में जाहिरा धर्म दिखाई देने पर भी धर्म नहीं है, और जिस कर्म से विश्व प्रेम, सुख शान्ति और बल वृद्धि हो, वह धर्म है।

खेलना, कूदना और यम नीयम का यथायोग्य पालन करना, आसन, प्राणायाम करना और प्रफुल्ल चित्त रहना, दुःख और शोक न करना ही साधन है। नियमित रूप से शुद्ध रुधिर बनाने वाली चीजों का खान पान करना चाहिये। नियम विरुद्ध किये हुए प्रत्येक कर्मों का परिणाम बुरा होता है। बिलकुल कम खाने से मनुष्य का वजन घट जाता है और अधिक खाने पीने से स्थूलकाय हो जाता है। मेद बढ़ जाता है और पाचन क्रिया करने वाले यन्त्र दूषित हो जाते हैं। अवयवों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है, जिससे वह आक्रान्त हो जाते हैं और विराम लेने का प्रयास करते हैं। जिससे रस रुधिर मेद मज्जा शुद्ध तैयार नहीं होता और इनकी अशुद्धि से अवयव कमजोर और रोग ग्रस्त हो जाते हैं। अग्नि मन्द होकर उदर शूल और अजीर्ण पैदा करते हैं। मीठा रस युक्त और सुचिक्कण पदार्थ अच्छा और बल युक्त रुधिर बनाता है। खट्टा कड़वा और तिक्त पदार्थ हानिकर होता है। भोजन और व्यायाम अपनी शक्ति के अनुसार करना ही लाभदायक होता है। अधिकता सभी चीजों की बुरी होती है।

अलभ्य पदार्थ पाने की इच्छा न करने से आत्म बल बढ़ता है दुर्लभ पदार्थ पाने के लिये अथक परिश्रम करने की आवश्यकता है। संसार में जो वस्तु अधिक परिश्रम से मिलती है, उसी का मूल्य अधिक होता है। भय, लज्जा,

द्रुतगामी होने के कारण सब देश में फिरता रहता है, परन्तु किसी स्थान पर ठहरता नहीं और सुसुप्ति अवस्था के सिवाय बराबर अपने कार्य में लगा रहता है। इसको एक देश में ठहराने से यह बलवान होता है और सुचारु रूप से कार्य करने लग जाता है और यह नित्य नियमित रूप से ध्यान करने से हो सकता है। मन लगा कर किया हुवा प्रत्येक कार्य अच्छी तरह होता है और उसमें विशेषता आजाती है। ध्यान आसान काम नहीं है। पहले पहल जो वस्तु हम को सब से प्रिय हो उसी का ध्यान करना चाहिये। उसी में मन टिकता है और जब एक दफा मन को ठरने की आदत पड़ जाती है तो इसका स्वभाव ही ठहरने का बन जाता है, फिर साकार ईश्वर का और बाद में निराकार का ध्यान करने से उसमें भी मन लग जाता है। उससे मानसिक और आत्म बल दोनों की वृद्धी होती है। इसीका नाम अभ्यास है।

आतुर अवस्था में मन अधिक चञ्चल हो जाता है और बुद्धि भी अपना कार्य अच्छी तरह नहीं करती। उस समय अभ्यास नहीं करना चाहिये। आतुर अवस्था से मेरा मतलब अस्थिर बुद्धि होने से है जैसे भूख प्यास के समय, लघु दीर्घशंका के समय, रोग ग्रस्त होने के समय, भयातुर, शोकातुर, क्रोधातुर, मोहातुर, ग्लानियुक्त, और परिश्रमाक्रान्त होने के समय आतुर अवस्था होती है। यदि

करने परन्तु छोटी दुकान पर ऐसा ही होता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी अपनी छोटी आवश्यकता देवता की उपासना करने पर मजबूर करती है।

हमको हमेशा उच्च भावना रखनी चाहिये, ताकि हमको ईश्वर की ही शरण में जाने का सुयोग प्राप्त हो।

यदि थोक माल बेचने वाले के यहां बहुत से छोटे छोटे ग्राहक जाने लगेंगे, तो उसको भी थोड़ा थोड़ा माल सप्लाई करने का बन्दोबस्त करना पड़ेगा। ईश्वर के यहां से छोटी इच्छा की पूर्ती का यदि तुमको विश्वास नहीं है, तो यह तुम्हारी भूल है। वह सर्वशक्तिमान है। परन्तु तुम बड़ी इच्छा लेकर छोटी दुकान पर जावोगे तो कैसे काम चलेगा, फिर बड़ी दुकान पर जाना ही पड़ेगा। इस लिये सर्व शक्तिमान ईश्वर का ही द्वार खट खटाना अच्छा है ताकि जगह जगह भटकना न पड़े परन्तु इसके लिये श्रद्धा भक्ति और विश्वास की आवश्यकता है।

जो मनुष्य उच्च भावना रखता है वह महात्मा बन जाता है और जिस की भावना नीच होती है उसकी आत्मा गिर जाती है, यही ईश्वरी आज्ञा भी है। आत्मा हमारा साथ तभी तक देती है जब तक हमारी भावना उच्च होती है।

यह याद रखना चाहिये कि खुशामद से खुदा राजी का मसला बिलकुल गलत है गो इससे अक्सर तत्काल फल की प्राप्ती हो जाती है परन्तु हमेशा नहीं और इसका

साधारण कर्म जैसे नौकरी करना। उसका फल अवधि सहित है। यदि रोजाना तनख्वाह की नौकरी है, तो रोजाना और मासिक तनख्वाह की नौकरी है, तो महीने के खतम होने पर और सालाना है, तो साल खतम होने पर तनख्वाह मिल जावेगी। तनख्वाह मिलने के समय को विपाक कहते हैं। इसी प्रकार खेती करना है। आज हमने पोदीना बोया है, तो दो चार दिन बाद ही उसके पत्ते चटनी करने को मिल जायंगे और अगर अनाज बोते हैं, तो चार महीने के बाद पकने पर उसका फल मिलेगा और अगर खजूर बोते हैं, तो वह १०० वर्ष में जाकर फल देगा और हमारे पुत्र पोते उसका भोग कर सकेंगे। इसी प्रकार और बहुत से कर्म इसी श्रेणी में आते हैं।

उग्र कर्म का जल्दी फल मिलता है, जैसे आप किसी को गालियां निकाल रहे हैं, तो वह कबतक चुप रह सकता है। यदि वह भला आदमी है, तो जुबान से तुमको मना करेगा और यदि क्रूर स्वभाव का हुवा तो तुमको पीटने लगेगा या और किसी युक्ति से तुमको चुप करने की अवश्य कोशिश करेगा, कबतक सुनता रहेगा। देवता और ईश्वर की उपासना भी इसी श्रेणी के कर्म माने गये हैं।

देश काल और सम्बन्धित पात्र भी कर्म के विपाक करने में सहकारी हैं, जिस प्रकार अच्छे मनुष्य को अच्छी

मरते और दुःख पाते दिखाई देते हैं और यही अमल दरामद हमेशा से चला आता है। प्रह्लाद, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, नल, इत्यादि भक्त इसके प्रमाण हैं। परमात्मा को भी खाता ड्योढा करने की फिकर रहती है। इसी लिये पाप और पुण्य में से जो कम होता है, उसका पहले भुगतान कर दिया जाता है और बाद में सिर्फ एक ही प्रकार का विपाक बाकी रहता है, जिस को सलटाने में असुविधा नहीं होती।

विपाक के भोग में मनुष्य पर तन्त्र होता है और ज्ञान शून्य भी रहता है। इसी लिये भोग करते जाता है और कर्म करके फिर विपाक के लिये मसाला तय्यार कर लेता है, क्योंकि कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र है। यदि भोग के समय उदासीन रहे तो फिर कर्म बन्धन कैसे हो। विपाक का विचित्र पचड़ा है और समझ में न आने से ही प्राणी संसार चक्र में घूमता रहता है। एक विपाक का भोग करता है इतने में दस कर्म कर लेता है और उनके विपाक के समय में और दस कर्म कर बैठता है, इसी लिये खाता

श्रौर कर्म जब विपाक के रूप में होता है, तब भोग के लिये शरीर धारण करना पड़ता है। सूक्ष्म शरीर में विपाक का भोग होने में कठिनाई है। इसलिये स्थूल शरीर में आना पड़ता है। इस तरह आत्म रूपी सूर्य कर्म बन्धन में बंध कर पहले सूक्ष्म शरीर में बन्धता है श्रौर फिर स्थूल शरीर में। तीन तह के भीतर से भी उसका प्रकाश कभी कभी बाहर निकलता रहता है श्रौर वह तह भी सब स्थानों पर एक जैसी मोटी यानी अवरोधक नहीं हुवा करती। जिस प्रकार सूर्य के बादलों के बीच आजाने पर भी उजाला बना रहता है श्रौर जहां पर बादल कम होते हैं वहां पर पहुंचने से उसकी किरणें दिखाई भी देने लग जाती हैं।

उपरोक्त तीनों आवरण जो आत्मा को ढके रहते हैं उसी का नाम अविधा है श्रौर ज्ञान के प्रकाश में यह आवरण होते हुए भी बाधा नहीं दे सकता श्रौर नष्ट होने लगता है श्रौर जब एक दो दफा आवरण क्षीण होकर आत्म प्रकाश के साथ ज्ञान के प्रकाश का सम्मेलन हो जाता है। तब आनंद आने लगता है श्रौर मनुष्य उसकी खोज में स्वयम लग जाता है।

संसार में जो कुछ हम देखते हैं, सब प्रकृति का नमूना है। प्रकृति यानी मन, बुद्धि अहंकार श्रौर आकाश, वायु, अग्नि जल व पृथ्वी प्रत्येक वस्तु में किसी न किसी मात्रा में मिले रहते हैं। प्रत्येक वस्तु बनती है, यानी प्रगट रूप में आती है,

है। बिजली की सहायता से घन्टे भर में अण्डा पका कर बच्चा निकाला गया है। हमारी खेती चार मास में पका करती है, वही अनाज अमेरिका में बिजली की सहायता से दो मास में ही पका कर काट लिया जाता है। पैदल चलने से मनुष्य घन्टे भर में दो कोस चलता है और मोटर में चढ़ कर घन्टे भर में २० कोस चला जाता है। एक औरत चक्की से एक दिन में ज्यादा से ज्यादा आध मण आटा पीस सकती है, परन्तु मशीन की चक्की एक दिन में सैकड़ों मन आटा पीस देती है। किसी न किसी प्रकार प्रकृति की आवश्यकता पूरी की जाती है। काल का कोई बन्धन नहीं है। कर्म का विपाक जल्दी होने में भी परोक्ष रूप में प्रकृति की ही सहायता होती है। एक लोटा जल अगर पतली धार बांध कर खिन्डाया जावे तो सारा पानी निकलने में देरी लगेगी और लोटे को उल्टा कर देने से फौरन सब जल बाहर आ गिरेगा।

प्रत्येक वस्तु का आंशिक रूप से तो परिवर्तन प्रत्येक क्षण में होता रहता है परन्तु वह परिवर्तन गिना नहीं जाता—सामूहिक परिवर्तन ही परिवर्तन कहलाता है जैसे मनुष्य के शरीर में रुधिर के परमाणु प्रत्येक क्षण में अनेक विनष्ट होते हैं और अनेक नवीन उत्पन्न होते रहते हैं, परन्तु अभिमानी जीव जब उसको त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है, तभी उसको मृत्यु या नवीन उत्पत्ति कहा जाता

वायु से आपूर्ण होता है। इसकी सीमा निर्धारित है। सीमा से अधिक खान पान और वायु सेवन से थोड़े काल में शरीर पक कर नष्ट हो जाता है और सीमा से कम खान पान और वायु सेवन से भी कच्चा ही थोड़े समय में विनष्ट हो जाता है। नियमित रूप से खान पान और वायु उत्ताप के सेवन से अधिक समय तक नाश नहीं होता।

अधिक खाने से अग्नि मन्द होकर अजीर्ण हो जाता है और मन्दाग्नि संग्रहणी इत्यादि अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। अधिक पीने से मेद वृद्धि हो जाती है और नसें फूल कर कमजोर हो जाती हैं जिससे पाचन क्रिया नहीं होती और अण्ड वृद्धि जलन्धर इत्यादि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वायु कम मिलने से मनुष्य घुट कर मर जाता है या रस रुधिर की शुद्धि अच्छी प्रकार न होने से अनेक प्रकार के रुधिर विकार सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। और अधिक वायु सेवन का तो नाम ही रोग है यानी उसको स्वास, दमा इत्यादि नामों से पुकारते हैं। खान पान की कमी से भस्माग्नि आदि रोगों की उत्पत्ति होकर शरीर शुष्क और कमजोर हो जाता है। अधिक परिश्रम से मनुष्य जल्दी पक्व अवस्था को पहुँच जाता है यानी बुड्ढा हो जाता है और परिश्रम न करने से आलसी और निकम्मा हो जाता है। प्रत्येक अंग उन्नत दशा प्राप्त नहीं कर सकते यानी डेवेलपमेन्ट नहीं

आकाश में रहने से ही उनकी आयु बड़ी होती है, सर्प में भूमि तत्व विशेष होता है और भूमि में रहने से ही उसकी आयु बड़ी होती है। मगरमच्छ जल में रहने से ही बड़ी आयु पाता है और वह भी समुद्र के मध्य भाग में, मनुष्य मध्य स्थिति मे रहने से ही बड़ी आयु पा सकता है। प्रकृति का जो माध्यम मनुष्य के लिये उपयुक्त है, उसी का नाम योग है। तत्व की आयु सामूहिक अवस्था में बड़ी और सूक्ष्म यानी प्रमाण रूप में छोटी होती है। जैसे पृथ्वी और उसके प्रमाणु।

मनुष्य की आयु योग रूप में दस हजार वर्ष की और साधारण स्थिति में सौ वर्ष की और विकार रूप में क्षण भर की है, काल का नियम नहीं।

जब काल का बढ़ाना और घटाना मनुष्य के अधिकार में हो जाता है और उसके लिये कृत्रिम उपायों की आवश्यकता है, काल कल्पनिक या कृत्रिम वस्तु है तो फिर कर्म का विपाक लाने के लिये भी यही नियम लागू होगा और विपाक से विपाक का अवरोध और विरोध या निरोध किया जा सकता है। और कर्म का विपाक जल्दी किया जा सकता है।

यदि इस नियम को न माना जावे तो मोक्ष असम्भव हो जाती है और मोक्ष असम्भव नहीं है, यह सब लोग जानते और विश्वास करते हैं और करना चाहिये। परन्तु

कर बरफ हो जाता है, फिर उसको पानी नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार एक तत्व में दूसरे तत्व का सीमा से न्यूनाधिक मेल होने से विकार उत्पन्न होता है और विकार ही परिवर्तन का मूल कारण है। फुटबाल के ब्लेडर में सीमा से अधिक वायु भरने से वह फट जाता है और देगचो के भीतर की वायु तमाम यदि बाहर निकाली जाय तो उसका चिपला यानी ठोस तांबा या पीतल बन जायगा। इसी तरह प्रत्येक वस्तु का बन्धन विकार उत्पन्न होने पर टूटता है, परन्तु यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बन्धन टूट जाने पर उस पर कोई नियम ही लागू नहीं होगा, उसके लिये दूसरा बन्धन मौजूद है। दूसरी सीमा मौजूद है। ब्रह्माण्ड भर नियम में आवद्ध है, पद पद पर बन्धन मौजूद है। एक बन्धन से मुक्त होते ही दूसरे बन्धन की सीमा आजाती है। बन्धन मुक्त होने पर तो उसकी कोई सीमा नहीं रहती, उस पर कोई नियम लागू नहीं होता, वह विश्व भर में विस्तृत हो जाता है। वह अनादि और अनन्त हो जाता है, उसका कोई खास रंग रूप या गुण नहीं कहा जा सकता, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर प्रत्येक प्रमाणु में प्रवेश कर जाता है। यही उसकी शान्त दशा कहलाती है। बाकी बन्धनयुक्त जितनी दशायें हैं, सब विकारवान हैं, विकार का नाम ही संसार है। शान्त दशा का नाम प्रलय

जल कर मनुष्य को कृश बनाता है और नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करता है।

विकार से काल संकुचित होता है। बुद्धि में विकार हो जाने से लोग उसको पागल कहने लग जाते हैं। इन्द्रियों में विकार उत्पन्न होने से उनके गुण और स्वभाव की हानि होती है। मज्जा में विकार उत्पन्न हो जाने से सर में दर्द पैदा होता है। नाभि यन्त्र में विकार उत्पन्न होने से या तो बदहजमी हो जाती है और भूख बन्द हो जाती है और या दस्त लगते हैं। और पेट में दर्द होता है।

वायु विहीन आकाश नहीं होता क्यों कि आकाश का गुण फैलना है परन्तु जब तक उसमें वायु रूपी विकार उत्पन्न नहीं होता, उसमें फैलने का गुण ही नहीं होता। जब हम किसी वस्तु में वायु भरते हैं तो आकाश उसमें स्वतः ही प्रवेश कर जाता है और वायु निकालने पर आकाश स्वतः ही निकल जाता है। वायु में अग्नि होती है। अग्नि बिना वायु की गति रुक जाती है और वायु में से अग्नि निकाल लेने पर वह जल के रूप में परिणित हो जाती है जिसको तरल वायु के नाम से आधुनिक विज्ञानवेत्ता पुकारते हैं। अग्नि जल बिना नहीं होती। बिना जल की अग्नि तत्क्षण जल कर ठंडी हो जाती है जल से अभिप्राय तरल पदार्थ है। जल में पृथ्वी तत्व होता है और वह निकाल लेने पर जल जल ही नहीं कहला सकता और

टूट जाता है और प्राण रूपी जीव आकाश रूपी ईश्वर में विलीन हो जाता है। आकाश और वायु जिस प्रकार सम्मिलित रहते हैं उसी प्रकार जीव और परमात्मा की एकता है। परमात्मा को खोजने के लिये कहीं दूर जाना नहीं पड़ेगा, विकार मिटाने से ही काम चल जायगा। प्रत्येक वस्तु अपनी सीमा में रहती है, तब तक उसमें विकार रहता है, जब विस्तृत होती है, विकार नष्ट हो जाता है। मनुष्य जब तक मेरा तेरा का भाव रखता है, तब तक विकार है। जब विश्व अपना समझने लगता है, तब विस्तृत होजाता है और बन्धन टूट जाता है

प्रकाश ।

प्रकाश, अन्धकार, रंग, रूप, साकार, निराकार इत्या[illegible] प्रकृति के एक ही वृक्ष की शाखा हैं। मूल इनका अभिन्न ही है। रूप, रंग, और आकार दिखाई देने ही को प्रक[illegible] कहते हैं, इसी का नाम साकार है और न दिखाई देने[illegible] अन्धकार या निराकार कहते हैं। प्रकाश की कोई नि[illegible] सीमा नहीं है। प्रकाश की कमी अन्धकार और अन्ध[illegible] की कमी प्रकाश है।

साधारण दृष्टी से जब वस्तु का आकार दिखा[illegible] है तब ही लोग उस वस्तु को साकार कहा करते हैं[illegible] सबकी दृष्टी समान नहीं होती किसी को थोड़ी [illegible]

र शरीर में चमड़ी, मांस, हड्डी आदि सब जगह प्रवेश कर सकता है और तब अन्तर ज्योति संकुचित हो जाती है। और जब बाहरी प्रकाश कम होजाता है तब अन्तर ज्योति प्रसरण करके शनः शनः बाहर भी फैल जाती है। बाहरी प्रकाश और भीतरी प्रकाश की गति में भिन्नता है। बाह.. प्रकाश शीघ्र गामी है या यों कहिये कि भीतरी प्रकाश स्थाई और बाहरी क्षणभंगुर है। इसलिये जब मनुष्य उजाले से एकदम अन्धेरे में प्रवेश करता है तो उसको कुछ भी दिखाई नहीं देता। उस समय दोनों प्रकाश का सम्बन्ध टूट जाता है या विषमता आजाती है, इसीलिये ऐसा होता है और जब थोड़ी देर में सीमा मिल जाती है और विषमता नष्ट हो जाती है तब फिर दिखाई देने लगता है।

श्वेत रंग प्रकाश वर्धक है और उसमें सब प्रकार के रंगोंका समावेश है। जितने गहरे रंग मिलकर श्वेत रंग बनेगा उतना ही वह उज्ज्वल दिखाई देगा। प्रकाश से म श्वेत रंग और प्रत्येक रंग बनाये जा सकते हैं। प्रकाश ए प्रकार का श्वेत रंग है या सात रंगों का समूह है और व सब रंग अलग अलग देखे जा सकते हैं और अलग किये जासकते हैं। इस लिये प्रकाश रंग रूप और आकार एक ही वस्तु के नाम हैं।

साधारण प्रकाश भी दो प्रकार का होता है, एक शीत रश्मी दूसरा तेजो रश्मी। शीत रश्मी प्रकाश चंद्रम

उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। प्रकाश और समान वायु भी इस में सहायक होता है। वायु के बिना तो कोई प्राणी बच नहीं सकता परन्तु प्रकाश बिना भी प्राणी मात्र का बचना कठिन हो जाता है।

जब किसी वस्तु ज्वलन शील में से वीर्य जल जाता है तो उसका रंग काला हो जाता है और उसकी गर्मी कम हो जाती है।

वीर्य ओषजन से जलता है। प्राण में ओषजन की मात्रा होती है। वह वीर्य को जलाती है। सब से हलकी वायु का नाम अभिद्र यजन है। जब अभिद्र यजन ओषजन से जलता है तब जल पैदा होता है। जब कोई ज्वलन शील वस्तु जलती है तो उसमें से उत्ताप के साथ २ श्वेत रंग भी प्रकाश रूप में निकल जाता है और वस्तु का रंग काला हो जाता है। काला रंग शीतल होता है। और आर्द्र भी होता है। गर्मी सर्दी को फौरन ग्रहण कर लेता है। काले रंग में पीला रंग मिला देने से हरा रंग होता है। पीला रंग उष्णता का है। श्वेत वस्तु को धीरे धीरे तेज रश्मी पहुंचने पर पीला रंग बनता है। अधिक उत्ताप पहुंचने से लाल और नारंजी रंग बन जाता है। हरे रंग में लाल रंग मिलने से कत्थई और काले रंग में से पीला रंग निकाल लेने पर नीला रंग बनता है। नीला और लाल रंग मिला कर बैंगनी रंग बन जाता है। रंग के विषय में अनेक पुस्तकें लिख सकती

में उष्णता का हाथ है कोई कार्य बिना उष्णता के नहीं हो सकता। हमारे शरीर में जो कार्य करने की शक्ति यानी अहंकार है वह भी एक प्रकार की उष्णता से उत्पन्न होता है।

गति।

गति की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है। वायु शब्द से विकम्पित होती है और उससे गति की उत्पत्ति होती है। प्राणी मात्र के श्वास प्रश्वास से वायु में आकर्षण विदीर्ण होता है और वायु मंडल में शीत पहुंचने पर गैसों का संकोचन होता है और गर्मी पहुंचने पर वह विस्तार करते हैं, जिससे तीव्र गति पैदा करते हैं और बादलों के रूप में हम उनका तमाशा देखा करते हैं। प्रत्येक परमाणु अपने स्वजातीय परमाणु के साथ गर्मी सर्दी की सीमा के अनुसार नियमित मात्रा में मिलता है, विदीर्ण यानी प्रथक होता है जिससे गति पैदा होती है। प्रत्येक वस्तु नवीन, पक्व, जरजरित और परिवर्तित दशा धारण करती रहती है और नवीन अवस्था में सूक्ष्म यानी छोटा आकार होता है, बाद में बढ़ता है और फिर टूटता और छोटा होता है, जिससे वायु मण्डल में गति उत्पन्न होती है। सबसे बड़ा कारण गति के उत्पन्न होने का आकाश में सूर्य और तारे व पृथ्वी का वेग के साथ घूमना और चन्द्रमा का समुद्र के जल को आकर्षण करना जिससे ज्वार भाटा पैदा होता है

है और यही कारण है कि सिद्ध पुरुष पृथ्वी क्या ब्रह्मांड भर की वायु को रोक सकते हैं और रोका है जिसके अनेक उदाहरण हमारे शास्त्रों में मिलते हैं। श्री हनुमानजी के इन्द्र ने जब गदा का प्रहार किया और उनको मूर्छा आगई तब उनकी माता अञ्जनी ने वायु को रोक दिया था और वेद व्यासजी ने राजा परीक्षित को महाभारत की कथा सुनाते समय वायु को रोक कर उस का संशय दूर किया था। यह सब प्राण की शक्ति का ही प्रभाव था। अभ्यास से हम जितनी दूर चाहें प्रश्वास का संचालन कर सकते हैं। ऐसा होता भी रहता है, परन्तु गति क्षीण होने के कारण उसका प्रभाव हमारी समझ में नहीं आता। इसीलिये अभ्यास की आवश्यकता है, जिस को प्राणायाम कहते हैं और जिससे प्राण की शक्ति बढ़ती है। यह जलसे बनता है।

वाणी।

प्राण और मन की तरह वाणी भी एक शक्ति विशेष का नाम है। यह वह शक्ति है कि जिसके प्रताप से हम इच्छित शब्द का उच्चारण करते हैं। शब्द से आकाश में कम्पन होता है और हृदय पर वाणी का प्रभाव होता है। वाणी के भेद और उनके प्रयोग शाम वेद में बतलाये गये हैं जिनको जान लेने से मनुष्य तो क्या देवता तक वश में हो जाते हैं। वाणी से भूकम्प हो सकता है। वाणी से मनुष्य का क्या प्राणी मात्र का जो चाहो कर सकते हो, मार सकते हो जिला

नाम	बुद्धि	अहंकार	मन	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
स्वभाव	स्थिर	चंचल	मूढ़	विस्तीर्ण संकोचन	कम्पन शुष्क करण	उष्णता प्रकाश	सम्मेलन पृथक करण	आकर्षण विशेष
प्रक्रिया	निर्णय	क्रिया	संशय	अवकाश दान	चालन	ज्ञान	उत्पादन	वर्धन
स्वरूप	ज्ञान	प्रवणता	विचलित	स्थान	शीत	उष्ण	आर्द्र	कठोर
गुण	[illegible]	धीर	विकल	शान्त शब्द	शीत स्पर्श	उज्ज्वल रूप	आस्वाद रस	भार गन्ध
रस	[illegible]	[illegible]	इच्छा कल्पित	तीखा	कषाय	तिक्त [illegible]	मृदु (मीठा) [illegible] (चरका)	कटु
रंग	[illegible]	[illegible]	[illegible]	आसमानी नीला	[illegible]	पीत लाल	हरित	काला

पहाड़ का बल शिलाजीत या इसी प्रकार का पदार्थ होता है। प्राणी का बल वीर्य कहलाता है और धातु का बल पारद कहलाता है कि जिसको शिव वीर्य भी कहते हैं। जब तक बल बना रहता है प्रत्येक वस्तु भारी रहती है और बल निकल जाने पर भार कम हो जाता है। उपरोक्त नाम पक्के वीर्य या बल के हैं, कच्चे वीर्य के तो अनेक नाम और अनेक ही रूप होते हैं।

प्राणी मात्र का वीर्य खर्च होने से उसको आनन्द बोध होता है और वीर्य के जलने से ज्ञान होता है और वस्तु का वीर्य खर्च होने से यानी जलाने से प्रकाश उत्पन्न होता है। जलने के बाद प्रत्येक वस्तु का स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाता है। वस्तु में वीर्य की शक्ति के अलावा गर्मी भी होती है और जलते समय वह बाहर निकल कर वायु में समा जाती है। वीर्य सूक्ष्म रूप में अग्नि और वायु में अधिक पाया जाता है। इसमें अधिक मात्रा अग्नि तत्व की और कुछ जल तत्व और कुछ पृथ्वी तत्व मिला रहता है। इसमें सम्मेलन और परिवर्तन का गुण विशेष है।

प्रकृति दर्शन।

भूमि रापोऽनलो वायुः खंमनो बुद्धिरेवच। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ (श्री मद्भगवद्गीता अध्याय ७ श्लोक ४) प्रकृति आठ प्रकार की है। बुद्धि, अहंकार, मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

गोचर दिखाई भी दे सकती है परन्तु अभ्यास कठिन है, इसलिए इसकी तरफ लोगों का झुकाव कम होता है। यह परमाणु कभी २ जब नेत्रों के पास होते हैं या नेत्र पर सटे हुए होते हैं, तब दिखाई भी देते हैं जिनको मनुष्य भ्रम कहा करते हैं और मारवाड़ी भाषा में इनको भाखला भी कह देते हैं। नेत्र बन्द कर लेने पर यह बहुधा दिखाई देते हैं परन्तु भ्रम समझ कर इन की तरफ ध्यान ही नहीं दिया जाता। उज्ज्वल वस्तु को देखने के बाद उसका सूक्ष्म रूप बनाने में मन का अधिक समय लगता है और जब तक उसका प्रगट रूप रहता है वह दिखाई भी देता रहता है। भावना विशेष मन का है दूर काल ज्ञान पर किस प्रकार दिखाई दे सकता है और भावना भी [illegible] हैं होते हैं उनका [illegible] कर उन में मन का संमिलन करा कर और उनके भीतर के सूक्ष्म संस्कारों का [illegible] कर उन आकार अपने नेत्र पर [illegible] दिया का गुरु मन्त्र है जिसका [illegible] करना और [illegible] प्राप्त करना पड़ता है कि [illegible] से होना सम्भव है। [illegible] दुख का समाचार देता है। [illegible] उज्ज्वल रंग का सुख और [illegible] का सूचक होता है। इस प्रकार इनके आकार को देख कर [illegible] और शुभाशुभ मालूम की जा सकती है। इनका अभ्यास [illegible]

मात्रा की कमी बेशी से इनके अनन्त भेद हैं और इन्हीं के सम्मिश्रण और भेद रूप यह संसार का नमूना हमारे सामने हैं। प्रत्येक वस्तु में प्रकृति का किस प्रकार सम्मेलन है यह बात प्रत्येक वस्तु के आकार स्वभाव रंग गुण प्रक्रिया आदि बातों को जांच कर निर्णय करना चाहिये। पुस्तकाकार में नहीं लिखे जा सकते। यहां पर सिर्फ जांच करने में सहायता देने के लिये उपरोक्त बातें लिखी गई हैं।

तेज।

प्रकाश जो तात्विक है उसको छोड़ कर मानसिक प्रकाश में जो तेज है, उसको ओज, तेज (Aura) कहते हैं। मन से जब हम कोई कार्य लेते हैं तो वह व्यय होता है। जिस प्रकार लकड़ी जलाने से उसका वीय जल जाता है और उसके परमाणु प्रकाश रूप से आकाश में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मन जब व्यय होता है तो उसके परमाणु मन से बिछड़ कर आकाश में चले जाते हैं या स्वतन्त्र हो जाते हैं। जिन में प्राणी की आकृति और अवस्था यानी मनुष्य का आकार स्वभाव गुण इत्यादि और परमाणु अलग होने के समय वह दुःखी था या सुखी, क्रोध में था या प्रसन्न इत्यादि, उसकी तात्कालिक अवस्था संस्कार रूप से बनी रहती है। अभ्यास करने से यह प्रगट रूप

पुरुषों पर भी पड़ने लगेगा क्योंकि स्वप्न में जब हम किसी से लड़ाई करते हैं और मारपीट होती है तो हमारे लगी हुई चोट का तो दुःख हम को होता है परन्तु विपक्ष को हमारी पहुंचाई हुई चोट का कुछ भी ज्ञान नहीं होता क्योंकि हमारा मन इतना बलवान नहीं है कि धारा प्रवाह स्वप्न अवस्था में दूसरे पर प्रभाव डाल सके लेकिन जागृत अवस्था में इच्छित सृष्टि कर सकने पर दूसरों पर भी इसी प्रकार हमारा प्रभाव पड़ने लगेगा, जिस प्रकार हमारे शरीर पर पड़ता है।

हमारी इच्छा का प्रभाव अब भी किसी न किसी मात्रा में दूसरों पर अवश्य पड़ता है परन्तु मात्रा इतनी कम होती है कि उसका तत्क्षण हमको ज्ञान नहीं होता। जिन का मन शुद्ध और बलवान होता है, उनका शाप और आशीर्वाद अवश्य फलता है। मेस्मेरिज़्म और हिप्नाटिज़्म भी इसी प्रकार के अभ्यासों में से हैं। शुद्ध मन से की हुई इच्छा फली-भूत होती है। इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

मानसिक प्रयोग से जिस प्रकार रोग अच्छे हो जाते हैं, इच्छित फल की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार प्राण और वाणी का और तेज का भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे वाणी में अधिक शक्ति है और वाणी से अधिक बल मन में है और मन से अधिक प्राण में है। तेज की उत्पत्ति मन से भी होती है और प्राण और वाणी से भी होता है।

और संचय करके व्यवहार में लाना अत्यन्त लाभदायक है परन्तु साधारण मनुष्यों को यह सिर्फ कल्पना मालूम देगा और कठिनाई को देखते हुए इनका अधिक विवरण में करना नहीं चाहता। अल्प बुद्धि लोग तो इसी लेख को पढ़ कर मेरा उपहास कर सकते हैं परन्तु उपहास से डर कर जिस बात में कुछ सत्य हो उसको न कहना कायरता है और मनुष्य को निकम्मा बनाती है। नई खोज प्रथम उपहास का कारण बना करती है जैसे रेल्वे एंजिन की खोज।

स्वप्न अवस्था में जो कुछ हम देखते हैं, करते हैं, यह मानसिक सृष्टी है। परन्तु वह हमारी इच्छा के आधीन नहीं है और जागृत अवस्था आते ही हमारा स्वप्न नष्ट हो जाता है, इसका कारण क्या है?

हमारे मन में जो शक्ति है, वह स्वप्न अवस्था में एकत्र हो जाती है और जागने पर फिर सारे शरीर में विस्तृत हो जाती है या निद्रित अवस्था में मन थकावट की वजह से निश्चेष्ट हो जाता है। यदि मन की शक्ति बढ़ाई जावे तो वह थकेगा नहीं और एक लक्ष पर लगाने का अभ्यास करने से जागृत अवस्था में और इच्छित सृष्टी करने लग

परन्तु सबको शुद्ध और बलवान बनाये विना इच्छित कार्य फलीभूत नहीं होता। योग के साधन से तो स्वतः ही इनकी शक्ति बढ़ती है। इनकी प्रक्रिया और प्रयोग करने का ज्ञान स्वयम् हो जाता है।

चिकित्सा।

आज कल अनेक प्रकार से रोगों की चिकित्सा होती है परन्तु मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह औषधि ऐसी है कि विना सोचे समझे उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

बल की कमी ही ज्यादातर रोगों की जड़ है। उससे हमारे शरीर के भीतरी यन्त्र खराब होजाते हैं और पता तक नहीं चलता और बल कम होने के अनेक कारण तो डाक्टर ही बतला सकते हैं और वही इलाज भी कर सकते हैं। मेरे बताये हुए प्रयोगों पर कि जो नये हैं एक दम विश्वास होना भी कठिन होगा, परन्तु कुछ कारण इस प्रकार हैं। बल की कमी से प्राण की कमी यानी कमजोरी आती है, जिससे आलस्य छाया रहता है। प्रत्येक कार्य में रुचि कम रहती है। खुली हवा में टहलना तो इसकी चिकित्सा है ही परन्तु थोड़ा थोड़ा और ताजा जल अधिक बार में सेवन करने से प्राण वृद्धि होती है। जल स्वादिष्ट और शुद्ध हलका लाभ दायक होता है और प्राणायाम से प्राण की कमी दूर हो जाती है। मन की कमी होती है तब शरीर में गरमी अधिक हो जाती है और दिल की धड़कन बढ़ जाती है या विचलित

…यमित रूप से करना ही लाभदायक है। यह बीमारी उन …गों को अधिक होती है जो ज्यादा बैठने का काम करते और पूरी नींद नहीं सोते या समय पर भोजन नहीं करते …ा कम या ज्यादा खा लेते हैं। इससे अनेक रोग उत्पन्न …होते हैं। इसके लिए पैर के अंगूठे बांधना हाथों के बूकियों पर अनन्त बांधना पिण्डली पर तेल की मालिश करना और टट्टी जाने से पहले कुछ देर तक सीधा और निश्चेष्ट लेटना और ऐसा परिश्रम करना जिससे सारे शरीर को बराबर परिश्रम करना पड़े, अत्यन्त लाभदायक होता है।

बुखार में श्वास की गति तेज हो जाती है और श्वास को ठीक चाल पर लाने ही से बुखार उतर जाता है। सर का दर्द कब्जी से होता है। सुबह उठते ही ठन्डे पानी से सर और मुख धोना इसके लिये लाभकारी है और नेत्र की ज्योति को भी बढ़ाता और कायम रखता है। जुकाम में सर में दर्द होजाने पर या किसी अंग में वात विकार होने और दर्द होजाने पर आतशी शीशे से उस स्थान पर सूर्य की किरणें डालना लाभदायक है। खुजली दाद का भी यही इलाज है। आंखों को इन से बचाना चाहिये। आंख पर सूर्य की किरण पड़ने से हानि करती है। बिच्छू के काटने पर उस स्थान को आतशी शीशे से जला देना लाभदायक है।

आज कल जो अनेक प्रकार की चिकित्सा प्रचलित हैं और अनेक प्रकार की औषधियों के विज्ञापन छपे हुए देख,

से यह मुनासिब मालूम होता है कि कुछ मन के विषय में भी लिख दिया जावे ताकि समझने में अधिक कठिनाई न पड़े। मन अन्न के सत्व (सूक्ष्मतम विभाग) से बनता है। यह आकाश से दस गुणा बड़ा है। इसके परमाणु बिजली के परमाणु से हजारगुणा छोटे होते हैं। मन में सूक्ष्म रूप होकर शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध और अनेक जन्म जन्मान्तर के अनुभव यानी देखे हुए दृश्य, सुने हुए शब्द, और घ्राण, स्पर्श और आस्वादन में आये हुए विषय संस्कार रूप से बने रहते हैं और प्रबल इच्छा और संयम से प्रगट रूप हो कर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। मन वेधक है। पांचों तत्वों के परमाणु वेध कर पार निकल जाता है। स्थूल को सूक्ष्म और सूक्ष्म को स्थूल बनाने की इसमें शक्ति है। इस का रंग पर-वर्ण ग्राही है। जिस वस्तु में मन जाता है, उसी का सा रंग धारण कर लेता है। इस पर मैल चढ़ता है और धोया जा सकता है। इसमें विकार उत्पन्न होता है और शान्त किया जासकता है। यह स्वयम् संसर्ग से घटता बढ़ता है। अग्नि स्फुलिङ्ग की तरह इसके परमाणु भी इससे अलग होकर स्वतन्त्र हो जाते हैं, जिसको मन का व्यय होना कहते हैं। यह घन होता है और पतला होता है और जिस प्रकार दीर्घ दूरगामी है, ब्रह्माण्ड भर में जा सकता है, परन्तु साधारण मनुष्यों में मन की कमी या घट... ...जाने से इसकी धारा थोड़ा होय

मन में जो प्रकाश है, वह अनेक रंग का दिखाई देता है। मन का लक्ष्य सदा सदा में बदलता रहता है इसलिए इसको चञ्चल कहते हैं। मन अधिक खाने से अधिक बनता है। मन शुद्ध होने से शुद्ध मन बनता है स्थिर होने के लिए विश्वास की अधिक आवश्यकता है। विचार अधिक और गहन करने से मन थक जाता है और थका हुआ मन जल्द शान्त किया जा सकता है परन्तु बिना अभ्यास के अधिक देर शान्त अवस्था में नहीं रहता। लक्ष्य बदलने ही थका हुआ मन स्वस्थ हो जाता है। मानसिक कष्ट से मन मलीन और क्षय होता है और प्रसन्नता से हल्का और शुद्ध होता है। परिश्रम से क्षय होता है और विराम देने से घन और दृढ़ होता है।

जल और वायु से भी जिसमें दूसरे तत्त्व मिले रहते हैं इनका मन बनता है कि जो यदि हम निद्रा या स्वप्न या सुषुप्ति अवस्था में रहें तो आसन धारण करने के लिये यथेष्ट होता है। मन का प्राण और आत्मा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मन, द्वेष और अहंकार के पूर्ण विषय का दूसरा भाग में देने का विचार है। यदि इस पुस्तक की माँग अधिक होगी तो दूसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित किया जावेगा।

इति शुभम्।

ते यह गुमानित मालूम होता है कि कुछ मन के विषय में भी लिख दिया जावे ताकि समझने में अधिक कठिनाई न पड़े। मन अप के तत्व (सूक्ष्मतम विभाग) से बनता है। यह आकार से दस गुणा बड़ा है। इसके परमाणु बिजली के परमाणु से हजारगुणा छोटे होते हैं। मन में सूक्ष्म रूप होकर शब्द स्पर्श रूप, रस, गन्ध और अनेक जन्म जन्मान्तर के अनुभव यानी देखे हुए द्रव्य, सुने हुए शब्द, और प्राण, स्पर्श और आस्वादन में आये हुए विषय संस्कार रूप से बने रहते हैं और प्रबल इच्छा और संयम से प्रगट रूप हो कर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। मन वेधक है। पांचों तत्वों के परमाणु वेध कर पार निकल जाता है। स्थूल को सूक्ष्म और सूक्ष्म को स्थूल बनाने की इसमें शक्ति है। इस का रंग पर-वर्ण ग्राही है। जिस वस्तु में मन जाता है, उसी का सा रंग धारण कर लेता है। इस पर मैल चढ़ता है और धोया जा सकता है। इसमें विकार उत्पन्न होता है और शान्त किया जासकता है। यह स्वयम् संसर्ग से घटता बढ़ता है। अग्नि स्फुलिङ्ग की तरह इसके परमाणु भी इससे अलग होकर स्वतन्त्र हो जाते हैं, जिसको मन का व्यय होना कहते हैं। यह घन होता है और पतला होता है और जिस प्रकार वीर्य दूरगामी है, ब्रह्माण्ड भर में जा सकता है, परन्तु साधारण मनुष्यों में मन की कमी या अशुद्धता के कारण अधिक दूर जाने से इसकी धारा खोया होकर टूट जाती है।